प्रकाशकीय

श्री धर्मचन्दजी सरावगी की हृदय-रोग विषयक यह पुस्तक पाठकों तक पहुँच रही है। श्री धर्मचन्दजी प्राकृतिक चिकित्सा के निष्ठावान् व्यक्ति हैं और चाहते हैं कि घर-घर में प्राकृतिक जीवन तथा प्राकृतिक चिकित्सा का वातावरण बने, ताकि लोग तरह-तरह की दवा और उपचारों से बचें—अपनी शक्ति और धन का अपव्यय न करें।

आशा है, आपकी अन्य पुस्तकों की भाँति इस पुस्तक का भी समुचित स्वागत होगा।

लेखक की ओर से

विज्ञान द्वारा नयी-नयी औषधियों के आविष्कार के बावजूद देश-विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है, क्योंकि रोगी औषधियों से तंग आकर प्रकृति की शरण आते और लाभ उठाकर जीवनभर इसके भक्त बन जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा कोई चिकित्सा नहीं, वह तो जीने की एक कला है। जो इसका मजा चख लेता है, फिर वह इसे कभी नहीं छोड़ता। विदेशों में प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत-सा साहित्य निकल चुका है, अब भी नित्य-नया निकलता है। भारत में भी इस साहित्य की वृद्धि हो रही है, किन्तु प्रगति बहुत धीमी है।

आधुनिक युग में जिस तरह सभी बीमारियों पर एक ही औषधि 'पेन्सिलिन' का उपयोग चमत्कार दिखाता है, उसी तरह प्राकृतिक चिकित्सा में भी रोग सब एक हैं और उनकी चिकित्सा भी एक। फिर भी रोगी हमेशा उतावला होता है और दूसरे रोगों की चिन्ता न कर अपने रोग के सम्बन्ध में ज्यादा-से-ज्यादा जानना चाहता तथा जल्दी-से-जल्दी ठीक होने के लिए भी उत्सुक रहता है। इसलिए अंग्रेजी भाषा में हरएक रोग पर छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें रोगी मन लगाकर पढ़ता है और लाभ उठाता है।

कई वर्षों से मेरी इच्छा थी कि हिन्दी भाषा में हर रोग पर ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों, जिनमें रोग के लक्षण, कारण और निवारण का

विवरण विस्तारपूर्वक सरल भाषा में वर्णित किया जाय। पुस्तक का मूल्य भी अधिक न हो। इस सम्बन्ध में मैंने सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन-विभाग से चर्चा की। वे मेरी बात से सहमत हुए। उसीके फलस्वरूप 'दमा का प्राकृतिक इलाज' के बाद यह दूसरी पुस्तक 'हृदय-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा' पाठकों के सामने है।

इस पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा है, वह कोई मेरा अपना अनुसन्धान नहीं है। गत बीस-पचीस वर्षों में प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी जो देशी-विदेशी साहित्य पढ़ा, प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्रों में रोगियों पर प्राकृतिक उपचार देखे, साथ ही मैंने भी कई रोगियों पर यह चिकित्सा आजमायी, उसी आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है। आशा है, पाठक इससे लाभ उठायेंगे। यदि किसी बन्धु को कहीं कुछ सुझाव देने जैसा लगे, तो निःसंकोच सूचित करें, जिससे दूसरे संस्करण में यथोचित सुधार हो सके।

पुस्तक के लिए दो शब्द श्री रतनकुमारजी साव ने लिखने की कृपा की है। श्री रतनकुमारजी के परिवार में हृदय-रोग अनेक लोगों को हुआ। श्री साव स्वयं इस रोग से ग्रस्त रहे हैं। प्राकृतिक चिकित्सा से वे रोग-मुक्त हो गये हैं। इसलिए आपके अनुभवपूर्ण 'दो शब्द' का अपना महत्त्व है।

—धर्मचन्द सरावगी

दो शब्द

हमारा पुश्तैनी व्यापार वंशलोचन का है, इसके लिए कलकत्ते में हमारा परिवार विख्यात है। संयोग की वात है कि हृदय-रोग की वीमारी भी पुश्तैनी चली आ रही है, ऐसा मैंने वुजुर्गों से सुना है। सवसे पहले यह वीमारी मेरे पिताजी को हुई। उनकी आयु उस समय ७१ वर्ष की थी। दो-तीन वर्ष तक कई तरह की चिकित्सा करायी गयी, पर लाभ नहीं हुआ। ७४ वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हो गया। इसके वाद जीजाजी को यह वीमारी ५० वर्ष की आयु में हुई। उनकी भी चिकित्सा दो वर्षों तक हुई, पर लाभ नहीं हुआ। ५२ वर्ष की आयु में वे भी परलोक सिधार गये। तीसरा नम्वर मेरे ताऊजी के लड़के का था। इनको यह वीमारी केवल ४८ वर्ष की आयु में ही हो गयी। होनहार की वात है कि इलाज कराने का मौका ही नहीं मिला और वे तुरन्त गुजर गये। चौथा नम्वर मेरे ताऊजी का था। उनको हृदय-रोग की वीमारी ७६ वर्ष की आयु में हुई। एक वर्ष की चिकित्सा के वाद ये भी चल वसे। पाँचवाँ नम्वर परिवार में मेरा था। मुझ पर तो इस रोग ने ४६ वर्ष की आयु में ही धावा वोल दिया। प्राणों का भय सवको होता है। मैं घवरा गया और इलाज आरम्भ कर दिया। एलोपैथिक इलाज एक वर्ष तक किया, किन्तु फायदा नहीं हुआ। इस समय मेरी माताजी जीवित हैं। माताजी का करुणामय हृदय संतान के लिए विशेष धातु का वना होता है। मेरी अपेक्षा उनका घवराना ज्यादा स्वाभाविक था। चूँकि मैं वयस्क था, इससे वे मुझको तो कुछ नहीं कहती थीं, पर हर समय विशेष रूप से चिन्तित रहती थीं। हमारे परिवार में कविराज रामाधीन शर्मा वशिष्ठ 'आयुर्वेदाचार्य' का आना-जाना वहुत है। उनकी

सलाह सभी लोग मानते हैं। उन्होंने माताजी को सलाह दी कि वे मुझे प्रकृति-निकेतन में प्राकृतिक चिकित्सा का इलाज कराने के लिए भर्ती करवा दें। माताजी ने सोचा कि शायद वहाँ जाने के लिए मैं राजी होऊँ या नहीं, वे अपनी छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज कराने के वहाने प्रकृति-निकेतन में स्वय भर्ती हो गयीं। उन्हें देखने के लिए मुझे प्रकृति-निकेतन जाना पड़ता था। वहाँ का सुन्दर वातावरण एवं व्यवस्था देखकर मैं काफी प्रभावित हुआ और वहाँ के चिकित्सक महोदय से बात करके स्वयं भी भर्ती हो गया। वहाँ डेढ़ महीने तक रहकर मैंने अपनी चिकित्सा करायी और विलकुल स्वस्थ हो गया। अव हमारे परिवार में जव कभी चर्चा होती है तो लोग कहते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार हमारे परिवार में यदि पहले से ही हो गया होता तो परिवार के इतने लोगों को इस भयंकर रोग की चपेट में आकर प्राणों से हाथ न धोना पड़ता। श्री धर्मचन्दजी सरावगी से कई वार मिला और वातें भी हुईं। प्राकृतिक चिकित्सा का उनको नशा है। उन्होंने इसको अपना पेशा नहीं वनाया है। प्राकृतिक नियमों का पालन करके वे स्वयं स्वस्थ रहते हैं और चाहते हैं कि प्राकृतिक नियमों को पालकर अन्य लोग भी स्वस्थ रहें। इन दिनों वे प्राकृतिक चिकित्सा के साहित्य-सृजन में लगे हैं। उनकी 'हृदय-रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा' नाम की पुस्तक आपके सामने है। उससे लोगों को लाभ होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। प्रकृति या भगवान् ने मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए भेजा है, वह तो अपनी गलतियों से ही वीमार पड़ता है। यदि हम विना घवराये प्रकृति को मौका दें तो वह वीमारी स्वयं दूर कर देती है।

१४, मल्लिक स्ट्रीट,
कलकत्ता

—रतनकुमार साध

अनुक्रम

●

चित्र-सूची

●

१. विषय-प्रवेश

वीसवीं शताब्दी में कैंसर और हृदय की वीमारियाँ वैज्ञानिकों, चिकित्सकों और रोग-विशेषज्ञों के लिए सिर-दर्द वन गयी हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि इन रोगों की रोक-थाम कैसे की जाय, इनकी वढ़ोतरी कैसे रोकी जाय तथा इनका सही और राम-वाण इलाज क्या हो। भारत और पूर्वी देशों में ही नहीं, अमेरिका और यूरोप जैसे सभ्य-सुशिक्षित तथा सम्पन्न देशों में भी इन दोनों रोगों का वड़ी तीव्र गति से प्रसार हो रहा है। इनमें प्रथम स्थान हृदय-रोग का और दूसरा स्थान कैंसर का है। वहाँ के वैज्ञानिक और चिकित्सक इन दोनों रोगों की निरन्तर वृद्धि और इनसे होनेवाली मृत्यु-संख्या के कारण चिन्तित और परेशान हैं। इन रोगों के उन्मूलन के लिए विश्व के कोने-कोने में एक नहीं, अनेक संस्थाएँ खुली हैं और खुलती जा रही हैं और उन पर वेशुमार रुपये खर्च किये जा रहे हैं। किन्तु उनका प्रतिफल अभी तक कुछ भी नहीं दीख रहा है।

हृदय-रोगों के सम्बन्ध में आज संसार के सभी देशों के विचारक इस तथ्य को एकमत से स्वीकार करते हैं कि वर्तमान समय के मनुष्य हृदय-रोगों से एक बड़ी संख्या में मृत्यु के घाट उतर रहे हैं तथा आये दिन उससे भी बड़ी संख्या में लोग इन रोगों से आक्रांत होकर जीवन-यापन में अशक्त होते जा रहे हैं। विश्वासी अधिकारियों का कथन है कि संसार में आजकल जितनी मौतें होती हैं, उसमें लगभग ५० प्रतिशत मौतें केवल हृदय-रोगों के कारण होती हैं।

विश्व-विख्यात हृदय-रोग-विशेषज्ञ अमेरिका-निवासी डॉ० पाल डी० ह्वाइट विश्व के प्रत्येक भाग में हृदय-रोग से मरनेवालों की ठीक-ठीक संख्या तथा उनके कारणों का पता लगा रहे हैं। पिछले दिनों 'इण्डिया हार्ट फाउण्डेशन' नाम की संस्था के निर्माणार्थ दिल्ली में जो बैठक हुई, उसमें आपने भाग लेकर जो भाषण दिया, वह अत्यन्त विचारपूर्ण तथा अकाट्य प्रमाणों पर आधारित था। आपने अमेरिका में हृदय-रोग से मरनेवालों की बहुत बड़ी संख्या पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए बताया कि वहाँ ५५ प्रतिशत मृत्यु हृदय-रोग के कारण होती है। सन् १९५९ में मरनेवालों के आँकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा कि उस वर्ष

अमेरिका में कुल मृत्यु-संख्या १६५६६१० थी, जिसमें से केवल हृदय-रोग से मरनेवालों की संख्या ६१५६१० है। इस प्रकार अमेरिका में एकमात्र हृदय-रोग से मरनेवालों की संख्या ५५ प्रतिशत से अधिक जा रही है। आज भी अमेरिका में हृदय-रोग से मरनेवालों की संख्या में कमी होने के बजाय उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो रही है। यह स्थिति केवल एक अमेरिका की ही नहीं, संसार के उन सभी देशों की है, जहाँ आधुनिक पाश्चात्य-सभ्यता दृढ़ता के साथ अपने पैर जमाती जा रही है।

'ब्रिटिश मेडिकल जरनल' की भी रिपोर्ट यही है कि पिछले २५-३० वर्षों से हृदय-रोग, विशेषकर हृदय की गति बन्द हो जाने से मरनेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है।

भारत में एक ताजे सर्वेक्षण के अनुसार विभिन्न प्रकार के हृदय-रोगों का औसत निम्न लिखित है :

		प्रतिशत
(१)	र्यूटिक	३० से ४०
(२)	हाइपरटेन्सिव	२० से २५
(३)	इश्चयमिक	११ से १५
(४)	पल्मोनरी	१० से २०
(५)	कज्जेण्टिल	२ से ५

इन आँकड़ों का सर्वेक्षण करनेवालों का अनुमान है कि ४० वर्ष की आयु पार करने के बाद ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्य में कोई भी व्यक्ति किसी भी समय हृदय-रोग से आक्रान्त हो सकता है। वैज्ञानिकों का भी कहना है कि यदि हृदय-रोगों की रफ्तार यों ही चालू रही तो आनेवाले कुछ वर्षों के बाद एक-तृतीयांश लोग किसी-न-किसी रूप में हृदय-रोग का शिकार बने नजर आयेंगे। हृदय-रोग की इस व्यापकता को देखकर हृदय काँपने लगता है। हृदय-रोगसम्बन्धी उसी विभीषिका से त्रस्त होकर संसार के विचारशील वैज्ञानिकों एवं प्रसिद्ध हृदय-रोग-विशेषज्ञों ने पिछले वर्ष दिल्ली में विश्व-सम्मेलन किया था, जो एक सप्ताह चला था और जिसमें लगभग ४५ अन्य देशों ने भाग लिया था।

हृदय-रोगों से लोग प्राचीन काल में भी आक्रान्त होते थे, लेकिन उतने नहीं, जितने कि लोग आजकल हो रहे हैं। मिस्र की सबसे प्राचीन ममियों में इस बीमारी के लक्षण पाये गये हैं। यूनानी चिकित्सकों को भी दिल के रोगों का ज्ञान था। सर्वप्रथम १६२८ में विलियम हार्वे ने रक्त-संचार की गति आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध

में इस सम्बन्ध में और अनुसन्धान हुए और हृदय-रोगों के लक्षणों का अध्ययन, मनन किया गया। लेकिन उस दिशा में वास्तविक प्रगति १८१९ ई० में हुई, जब रेने लाएनेक ने 'स्टैथस्कोप' का आविष्कार किया। रक्त-चाप की माप सर्वप्रथम स्टीफेन हैल्स ने १७३३ ई० में की। सन् १८९५ ई० में विल्हेल्म रोटजे ने 'एक्सरे' विधि खोज निकाली और १९०३ में विलियम आइनथोवन ने 'इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी' की विधि खोजी। इन सब विधियों और अनुसन्धानों से दिल की बीमारी के सम्बन्ध में निरन्तर अधिकाधिक जानकारी प्राप्त होती गयी। निदान के सम्बन्ध में भी प्रगति हुई।

पर्याप्त जानकारी और अनुभव के बाद हृदय-रोग की शल्य-चिकित्सा की ओर कदम बढ़ाया गया। सन् १८८१ ई० में जे० राबर्ट्स ने दिल की शल्य-चिकित्सा की चर्चा की थी। उसके कुछ दिनों बाद यानी १८९६ में पहली बार एल० रेह्न ने हृदय का सफल आपरेशन कर उस चर्चा को व्यवहार में परिणत कर दिया। उसके बाद से अब तक हृदय के आपरेशन न जाने कितने हो चुके होंगे। इस क्रम में सबसे बड़ा दिल का आपरेशन १९४६ ई० में हुआ। इसमें डब्ल्यू० जे० पोट्स, एस० स्मिथ और एस० गिब्स ने विशेष

प्रकार के क्लैम्प का प्रयोग किया और अन्त में केपटाउन में डॉ० बर्नार्ड के विशेषज्ञ-दल ने दिल की शल्य-चिकित्सा की दिशा में अन्तिम मंजिल प्राप्त कर ली। अब रोगी हृदय को शरीर से निकालकर उसकी जगह कृत्रिम हृदय या अन्य व्यक्तियों के स्वस्थ हृदय लगाये जाने लगे हैं।

इतने सब अनुसन्धानों, अन्वेषणों तथा प्रयोगों के होने पर भी हृदय-रोगों की स्थिति न केवल पूर्ववत् बनी हुई है, अपितु उसमें दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। क्या यह आश्चर्य और चिन्ता की बात नहीं ? ●

२. हमारा हृदय

'हृदय' शब्द यौगिक है। यह तीन अक्षरों से मिलकर बना है : 'हृ+द+य'। 'हृ'=हरण करनेवाला और लेनेवाला। 'द'=देनेवाला। 'य'= यम-नियम का पूर्ण नियन्त्रण करनेवाला और अपने धर्म का सदैव पालन करनेवाला। हृदय का पहला काम है कि शरीर की नसों द्वारा समूचे शरीर के ओषजन-रहित अशुद्ध रक्त को उसके शुद्धीकरण के निमित्त हरण करना और प्राप्त करना। उसका दूसरा काम है शरीर को धमनियों द्वारा ओषजनयुक्त शुद्ध रक्त को शरीर के छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े अंगों को उनके पोषण के लिए पहुँचाना या देना। तथा उसका तीसरा काम है उपर्युक्त दोनों कामों को जन्म के पहले से मृत्युपर्यन्त नियमपूर्वक अनवरत रात-दिन अबाध-गति से करते जाना। सभी जानते हैं कि चाहे हम सोते हों या जागते, चाहे परिश्रम करते हों या विश्राम; चाहे रोगी हों या नीरोगी, हमारा हृदय धड़कता रहता और अपना काम किया करता है।

हमारा हृदय हमारे शरीररूपी कारखाने के लिए एक आश्चर्यजनक स्वचालित इञ्जन है, जो जीव के गर्भ में आने के ५-६ मास बाद से उसकी मृत्यु होने तक पलभर भी विश्राम लिये बगैर निरन्तर अपना काम करता रहता और शरीर का कारखाना चालू रखता है। स्वस्थ पुरुष की मुट्ठी से कुछ बड़ा, कलमी आम या नाशपाती की शकल का लाल रंग के थैले जैसा चार खण्डोंवाला मांसपिण्ड हृदय दोनों फेफड़ों के दरमियान मनुष्य के सीने में बायीं ओर रहता है। हृदय की बनावट मांसपेशियों और तन्तुओं से हुई है। वह भीतर से पोला और नुकीला होता है। उसका नुकीला सिरा नीचे की ओर रहता है। हृदय की रक्षा के लिए सामने छाती की हड्डी और बायीं ओर की तीसरी, चौथी और पाँचवीं पसलियाँ होती हैं। हृदय की लम्बाई साधारणतः ५ इंच, चौड़ाई ३॥ इंच और मोटाई २॥ इंच होती है। वजन लगभग ५ छटाक होता है। हृदय के चारों ओर एक झिल्लीदार थैली-सी होती है, जिसमें वह सुरक्षित रहता है। हृदय दो बड़ी बायीं और दो बड़ी दायीं कोठरियों में विभाजित होता है। ये दोनों दायीं और बायीं कोठरियाँ पुनः दो-दो कोठरियों में विभाजित होती हैं। ऊपर की दोनों कोठरियों में, जिन्हें 'अलिन्द'

या 'आरकिल' कहते हैं, शरीर से रक्त घूम-घामकर वापस आता है और नीचे की कोठरियों से, जिन्हें 'निलय' या 'वेंट्रिकल' कहते हैं, शरीर के विभिन्न भागों में जाता है। 'अलिन्द' और 'निलय' के बीच ऐसी दीवारें होती हैं, जिनके द्वारों से रक्त ऊपर की कोठरियों से नीचे की कोठरियों में ही आ पाता है, क्योंकि इनके द्वारों पर ऐसे पट लगे होते हैं कि जो एक ओर को ही खुलते हैं। दाहिनी ओर की ऊपर तथा नीचे की कोठरियाँ, जो क्रमशः 'अलिन्द' और 'निलय' हैं, बायीं ओर के 'अलिन्द' और 'निलथ' से मांसपेशी की जिस दीवार द्वारा अलग की जाती हैं, उसे 'सेपटम' या 'प्राचीर' कहते हैं।

हमारा हृदय एक मिनट में ७२ बार सिकुड़ता और फैलता रहता है। अर्थात् एक दिन में १,००,००० बार और एक वर्ष में चार करोड़ बार सिकुड़ता और फैलता है। यदि हम अपनी मुट्ठी खोलें और बन्द करें तो अपने हृदय की इस क्रिया का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जायगा। यदि हम अपनी मुट्ठी को एक सेकण्ड के भीतर कई बार बन्द करें और खोलें तो मुट्ठी की पेशियाँ कुछ ही मिनटों में थक जायँगी। लेकिन हृदय की मांसपेशियों की यह विशेषता है कि वे मनुष्य के मरते

दम तक सिकुड़ती-फैलती रहती हैं, फिर भी नहीं थकतीं। हृदय की मांसपेशियों के स्पन्दन के बीच जो थोड़ा रुकने का समय मिलता है, उसी अल्प समय को उनके विश्राम का समय समझ लीजिये। यह विश्राम की अवधि केवल पलभर के लिए ही रहती है। हृदय के इस प्रकार के आकुंचन और प्रसारण को ही उसकी 'धड़कन' कहते हैं। हर सिकुड़न पर हृदय अपनी कोठरियों से एक छटाक से अधिक रक्त शरीर की धमनियों में गुजार देता है। शरीर का कुल रक्त लगभग दो मिनट में हृदय की कोठरियों से होकर निकल जाता है। हृदय को सिकुड़ने में आधा सेकण्ड और फैलने में ३/१० सेकण्ड लगते हैं। स्त्रियों का हृदय पुरुषों के हृदय की अपेक्षा अधिक तेजी से धड़कता है अर्थात् ६० से १०० वार तक।

हमारा शरीर वहुत काम करता है। यदि हम जीवनभर प्रति दो मिनट में बराबर १० पौण्ड वजन जमीन से तीन फुट ऊँचा उठाते रहें तो उसमें जितना श्रम पड़ेगा, उतना श्रम हमारा हृदय सदैव करता रहता है। एक वैज्ञानिक ने यह जाँच की है कि दौड़ते व्यक्ति के पैरों की मांसपेशियाँ जितना काम करती हैं, उससे दुगुना अधिक काम हृदय की मांसपेशियाँ करती

हैं। इसलिए हृदय को सदा-सर्वदा रक्त-संचरण करने का काम करने के लिए काफी मजबूत और चुस्त होना चाहिए। वह स्वभावतः काफी मजबूत और चुस्त होता भी है। एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर के भीतर जितने भी अवयव और अंग होते हैं, उन सबमें उसका हृदय सर्वाधिक सशक्त, कार्यक्षम और सक्रिय होता है। यह इसलिए कि भोजन के रूप में जो ईंधन शरीर को प्राप्त होता है, उसका ५० प्रतिशत हृदय स्वयं अपने उपयोग में लाता है। इसके अलावा शरीर बाहर से जितना ओषजन ग्रहण करता है, उसका दसवाँ भाग केवल हृदय को मिलता है, जिसका वह उपयोग भी खूब करता है। यानी हृदय को जितना ओषजन मिलता है, उसके ८० प्रतिशत तक का वह उपयोग करता है। शरीर के अन्यान्य अंग ओषजन का अधिक-से-अधिक उपयोग करना नहीं जानते। वास्तव में हृदय की मांसपेशियों के तन्तु ओषजन का अधिकाधिक उपयोग करना जानते हैं। वे ओषजन से ईंधन को जलाते हैं, जिससे हृदय की मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं और उनकी गोल वर्तुलाकार तह तन जाती है। परिणामतः हृदय की उपर्युक्त वर्णित कोठरियों से रक्त दबकर निकल आता है। हृदय की मांसपेशियों के इस प्रकार की

सिकुड़न को 'सिस्टोल' अर्थात् 'हृदयाकुंचन' कहते हैं और उनके शिथिलपन को 'डाइस्टोल' अर्थात् 'हृदय की धड़कन'।

हृदय की एक और दीवार थोड़ी मोटी होती है। हृदय के ऊपरी भाग में बहुत-सी छोटी-छोटी रक्त-नलिकाएँ तथा शिराएँ होती हैं। ऊपर की ये रक्त-नलिकाएँ 'हार्दिक धमनियाँ' कहलाती हैं। वे रक्त को ले जाती हैं और रक्त अपने साथ ओषजन, भोजन तथा अन्य आवश्यक पदार्थ लाकर उन्हें हृदय के पेशीय तन्तुओं में पहुँचाता है।

हृदय से होकर प्रवाहित होनेवाली रक्त-नली दरअसल सेपटम या प्राचीर के दो पम्पों से निर्मित हृदय का एक भाग है। रक्त दाहिने अलिन्द से दाहिने निलय में प्रवाहित होता है। निलय रक्त को पिचकारी करके फेफड़ों में भेजता है। पश्चात् बायीं ओर का निलय, जिसे दूसरा 'पम्प' कह सकते हैं, रक्त को उन रक्त-नलिकाओं में भेजता है, जो समस्त शरीर में फैली रहती हैं। सेपटम दाहिनी ओर के रक्त को बायीं ओर के रक्त से मिलने नहीं देता।

निलय की मोटी दीवार रक्त को पम्प करने का काम करती है। अलिन्द यद्यपि रक्त को निलय में
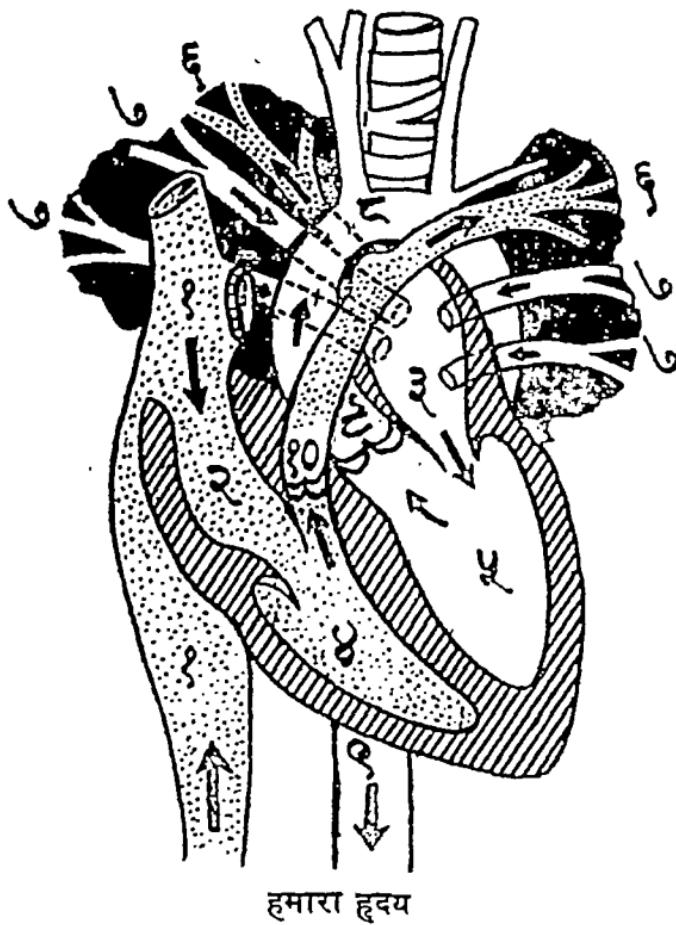
भेजता है, तथापि उसका असल काम है रक्त संचित करना। शरीर के विभिन्न अंगों में उपयुक्त रक्त बड़ी नलियों द्वारा हृदय में आता है। इन बड़ी नलियों को 'सुपीरियर' और 'इन्फीरियर वेनाकेवा' ('ऊर्ध्व महाशिरा' और 'निम्न महाशिरा') कहते हैं। छोटी नलियाँ या शिराएँ हाथ और बाँह के रक्त को बड़ी नलियों में उँड़ेलती हैं। निम्न महाशिराएँ शरीर के निचले भागों से रक्त लाती हैं और दाहिने अलिन्द में उँड़ेलती हैं। जिस रक्त का हृदय द्वारा उपयोग होता है, वह भी इसी दाहिने अलिन्द में उँड़ेल दिया जाता है। जो रक्त-नली उस रक्त को दाहिने अलिन्द में उँड़ेलती है, उसे 'महाहार्दिक शिरा' कहते हैं।

कपाट, जो दाहिने अलिन्द को दाहिने निलय से अलग करता है, उपयोग में आये रक्त को निलय में आकुंचन के समय अलिन्द में जाने से रोकता है। इस कपाट को 'त्रिकपाट' कहते हैं, क्योंकि इसमें मांस-तन्तुओं से बने तीन नुकीले उभार होते हैं। ये उभार फुंसी जैसी पेशियों से नियन्त्रित होते हैं, जो जब सिकुड़ने लगती हैं तो त्रिकपाट में लगी तन्तु की रस्सी खिचती है, जिससे कपाट खुल जाता है। त्रिकपाट के बन्द रहने से रक्त का प्रवेश रुक जाता है। इसलिए दाहिनी ओर का

निलय रक्त को ऊपर ढकेलकर उसे 'फुफ्फुसियाँ' धमनी में भेजता है। इस धमनी के दाहिनी ओर और वायीं ओर की शिखाएँ शरीर के दोनों फेफड़ों में प्रवेश करती हैं। काला रक्त फेफड़ों में प्रवेश कर 'केशिका' नलियों में बहने लगता है। केशिका नलियाँ उस दूषित रक्त वायु की छोटी-छोटी थैलियों में प्रवेश कर जाती हैं, जहाँ रक्त के कण 'कार्वन-डाई-आक्साइड' को त्याग देते हैं और उसके बदले ओषजन ग्रहण कर पुनः लाल और शुद्ध हो जाते हैं। रक्त इस प्रकार शुद्ध होकर तथा फुफ्फुसीय धमनी द्वारा हृदय में लौटकर वायीं ओर के निलय में प्रवेश करता है। उसके बाद संकोचन के समय ताजा रक्त वृहत् धमनी में चला जाता है और वहाँ से वृहत् धमनी की शाखाओं द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में फैल जाता है। वृहत् धमनी और फुफ्फुसियों के संयुक्त स्थान पर कपाट है, जो रक्त को पीछे की ओर प्रवाहित होने से रोकता है।
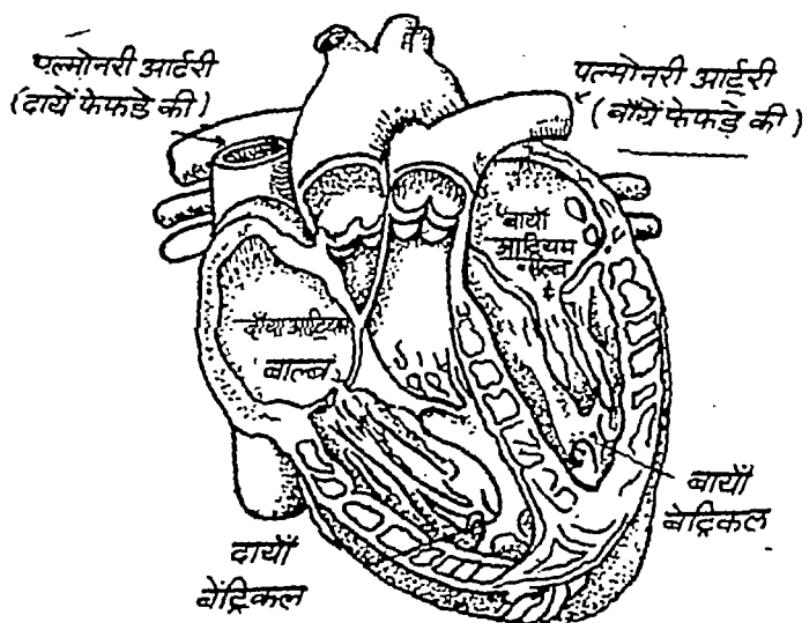
वायीं ओर के निलय को समस्त शरीर में रक्त भेजने का काम करना पड़ता है, इसलिए उसकी मांस-पेशियों को दाहिनी ओर के निलय से मोटा होना स्वाभाविक है। बायीं ओर के निलय को फेफड़ों के वायु की थैली में रक्त भेजना नितान्त आवश्यक होता

है। इसलिए बायीं ओर के निलय की दीवार भी मोटी होती है। देखिये नीचे हृदय का चित्र :

हमारा हृदय

चित्र-परिचय : १. महाशिराएँ (ऊर्ध्व एवं निम्न), २. दाहिना ग्राहक कोष्ठ (Right Auricle), ३. बायाँ ग्राहक कोष्ठ (Left Auricle), ४. दाहिना क्षेपक कोष्ठ (Right Ventricle), ५. बायाँ क्षेपक कोष्ठ (Left Ventricle), ६. फुफ्फुस धमनियाँ (अशुद्ध रक्त दाहिने एवं बायें दोनों फेफड़ों में प्रवेश कर रहा है।),

७. फुफ्फुस शिराएं (दोनों फेफड़ों में रक्त शुद्ध होकर ग्राहक कोष्ठ के माध्यम से बायें क्षेपक कोष्ठ में प्रवेश कर रहा है ।), ८. महाधमनी (Aorta) (इस महाधमनी से रक्त समस्त शरीर में पहुँचता है ।), ९. महाधमनी कपाटिका (Aortic valve), १०. फुफ्फुस धमनी कपाटिका (Pulmonary artery valve) ।

हृदय का क्रास सेक्शन

शरीर के रक्त की धारा के परिचालन से रक्त की धारा का वेग धमनियों की दीवारों पर दबाव डालता है, जिसे 'रक्त का दबाव' या Blood Pressure कहते हैं । धमनी के कट जाने पर फौआरे के रूप में निकलते रक्त को देखकर यह जाना जा सकता है । धमनियों तथा धमनिकाओं की दीवारें लचीली होती

हैं, जिसमें रक्त अच्छी प्रकार से आ जाने से रक्त का दवाव भी ठीक-ठीक वना रहता है। रक्त के प्रवाह में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन जव धमनियों का लचीलापन कम हो जाता है, तो रक्त का दवाव वढ़ जाता है। निलय-यन्त्र कपाट के खुलने के वाद ०-२५ से ०-३० सेकण्ड तक रुक-रुककर संकुचन करता है। इससे धमनियों का दवाव, संकुचन तथा फैलाव के साथ-साथ कम और अधिक होने लगता है। साधारण रूप से एक स्वस्थ व्यक्ति में रक्त का दवाव हृदय के संकुचन के समय १००-१२५ मि० मी० और हृदय की फैलने की अवस्था में ४५-८० मि० मी० हो जाता है।

आयु के साथ-साथ रक्त का दवाव वढ़ता है। आम तौर से वढ़े रक्त के दवाव का अर्थ दिल का अधिक संकुचन लिया जाता है। किन्तु उसका फैलाव जो धमनियों की दीवारों पर वास्तविक दवाव डालता है, संकुचन द्वारा हुए दवाव से विलकुल भिन्न है। 'मांस्कोविज' के अनुसार अधिक रक्तचाप से ही धमनियों की दीवारें कठोर हो जाती हैं। यह कठोरता अधिकतर दीवारों पर 'वसा' इकट्ठी हो जाने के कारण आती है। इस प्रकार की कठोरता का सबसे अधिक प्रभाव

मस्तिष्क, हृदय, नेत्र तथा गुर्दों की धमनियों पर पड़ता है। इससे मस्तिष्क की धमनियाँ फट जाती हैं और रक्तस्राव तथा 'कारोनोरी थ्राम्बोसिस' आदि रोग हो जाते हैं, जिससे कुछ ही घण्टों में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है या रक्त जम जाने के कारण लकवा लग जाता है।

●

३. हृदय की विलक्षण शक्ति

संसार की समस्त वस्तुओं में मनुष्य के हृदय जैसी विलक्षण एवं विस्मयजनक वस्तु और कोई नहीं है। यह सुकुमार-से-सुकुमार है और सख्त-से-सख्त भी। सुकुमार इसलिए कि यह अस्थिविहीन रक्त-मांस के एक छोटे एवं खोखले लोथड़े के सिवा और कुछ नहीं। सख्त इसलिए कि शरीरस्थित सभी अवयवों के कार्यों की अपेक्षा इसे बहुत सख्त और कठिन काम करना पड़ता है। यदि हमारा हृदय स्वभावत: अत्यधिक शक्तिशाली न हो, तो रोज १०३६८० वार स्पन्दित होकर सारे शरीर में फैली रक्त-नलिकाओं के जाल में, जिसकी लम्बाई १६८०००००० मील होती है, लगभग १८० मन रक्त को पम्प कर कैसे प्रेषण कर सकता ? एक गणितज्ञ ने हिसाव लगाकर वताया कि यदि मनुष्य की आयु ७० वर्ष की हो, तो हृदय के काम में जितनी शक्ति लगेगी, वह शक्ति एक वड़े युद्धपोत को समुद्रतल से चौदह फुट ऊपर उठाने के लिए काफी होगी। एक दूसरे गणितज्ञ ने लिखा कि केवल २४ घण्टे में हमारा

हृदय इतनी अधिक मात्रा में रक्त-परिवहन करता है कि उतने रक्त से ३००० गैलन की एक टंकी भरी जा सकती है और जीवन के अन्त तक हृदय रक्त की जितनी मात्रा संचरित करता है, वह पौने आठ करोड़ गैलन के लगभग बैठेगी। अर्थात् रक्त की उस मात्रा से एक १० मंजिली इमारत नख-शिख भरी जा सकती है। तीसरे वैज्ञानिक का कहना है कि यदि दो हृदय दो वर्षों तक अपना जोर लगायें तो उनकी संयुक्त संचित-शक्ति एक मोटरकार को एक बार समूची पृथ्वी की परिक्रमा करा सकती है। हृदय की पम्पिग शक्ति एक घण्टे में इतनी खप जाती है कि वह अन्यथा एक व्यक्ति को लिफ्ट में पाँचवीं मंजिल पर पहुँचा देगी।

हृदय में एक दूसरा विलक्षण गुण यह है कि वह अपनी क्षति-पूर्ति स्वयं कर ले सकता है। कुछ वर्ष पूर्व एक छोटा बच्चा पलंग से नीचे गिर गया। एक खुला हुआ चाकू भी, जो उसके समीप ही पलंग पर रखा था, बच्चे के संग नीचे गिरा और वच्चे के सीने में घुसकर हृदय तक पहुँच गया। एक कुशल सर्जन ने वच्चे के सीने का आपरेशन किया। उसका दिल तव भी धड़क रहा था। देखने पर हृदय में कोई घाव नहीं था। स्पष्ट है कि हृदय ने अपना घाव स्वयं ही भर लिया।

विश्राम के समय हृदय अपनी शक्ति का दसवाँ भाग ही काम में लाता है। एक विलक्षणता हृदय की यह भी है कि कठोर परिश्रम के कार्यों से एक स्वस्थ दिल को कोई क्षति नहीं पहुँचती। यदि हृदय अपनी समूची शक्ति को भी काम में लाये तो प्रकृति ने उसके लिए भी उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। वह है बेहोशी आना। बेहोशी में परिश्रम रुक जाता है, दिल को आराम मिलता है। बेहोशी से शरीर को जो थोड़ी-बहुत हानि होती है, उसकी पूर्ति बाद में धीरे-धीरे अपने-आप हो जाती है।

मनुष्य की सही-सही उम्र और उस उम्र में स्वास्थ्य की वास्तविक अवस्था के सम्बन्ध में चेतावनी देते रहना भी हृदय के अन्यान्य बड़े कामों में एक बड़ा काम है, जो बड़े महत्त्व का है। यदि पित्ताशय, एक वृक्क, अन्त्रपुच्छ, आधा भेजा, आमाशय तथा कुछ अन्य अवयव शरीर में न हों, तो भी जिया जा सकता है। लेकिन मनुष्य-शरीर में यदि हृदय न हो तो उसके लिए एक क्षणभर भी जीवित रहना असम्भव हो जाता है।

इस तरह इस छोटे-से मांस के लोथड़े हृदय में कितनी विलक्षण शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। इसे कितना कठिन परिश्रम करना पड़ता है, वह भी इस ढंग से कि

उसका कुछ भी पता न चले। अतः क्या यह कहना सही नहीं कि इसे चाहे जिस मूल्य पर नीरोग रखना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन आजकल तो सब खाका ही उल्टा हो गया है। आज हम हृदय की जितनी उपेक्षा करते हैं, उतनी और किसी चीज की नहीं। इस यन्त्र से आवश्यकता से अधिक काम तो लेते ही हैं, साथ ही इसका उपयोग बड़े भद्दे और बेढंगे तरीके से करते हैं। फिर भी चाहते हैं कि यह ठीक तरह से काम करता रहे। ●

४. हृदय क्यों अस्वस्थ होता है?

यह हम भलीभाँति जानते हैं कि प्राकृतिक नियमों का पालन करने में उदासीनता, काहिली अथवा उनका उल्लंघन, असंयमी जीवन-यापन एवं अप्राकृतिक आहार-विहार से ही शरीर के सभी अंग अस्वस्थ होते हैं अथवा सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। हृदय भी इसका अपवाद नहीं। हृदय-रोग का नाम या रूप चाहे कुछ भी हो, उसका कारण प्रत्येक दशा में एक ही है और वह है, हृदय के किसी एक या एक से अधिक भीतरी या बाहरी भाग में विजातीय द्रव्य का रुकना या एकत्र होना। पूरे शरीर में या हृदय के भीतर-बाहर या आसपास विजातीय द्रव्य के एकत्र होने के विविध कारण होते हैं, जिनका कुप्रभाव परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से विजातीय द्रव्य के माध्यम से हृदय पर अवश्य पड़ता है, जिससे वह अस्वस्थ या रोगी हो जाता है। वे कारण हैं :

१. व्यायाम और शारीरिक श्रम का अभाव। २. मोटापा। ३. शहरी जीवन और उसके स्तर का

उच्च होना । ४. पेटूपन, अप्राकृतिक, गरिष्ठ एवं असंतुलित भोजन । ५. औषधियों का अधिक सेवन । ६. बढ़ा हुआ रक्तचाप, संक्रामक तथा अन्य रोग । ७. मानसिक तनाव । ८. शक्ति से अधिक श्रम करना । ९. अपर्याप्त विश्राम और असंयत निद्रा । १०. नशे की लत । ११. आनुवंशिकता । १२. वृद्धावस्था । १३. गर्भावस्था । १४. अधिक वीर्य-क्षय । १५. अधिक गर्मी और १६. अधिक ठंडक । इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :

१. व्यायाम और शारीरिक श्रम का अभाव : हृदय-रोग के कारणों पर प्रकाश डालते हुए प्रेसीडेण्ट आइसनहावर के हृदय-विशेषज्ञ डॉक्टर 'डडले ह्वाइट' ने एक बार जोर देकर कहा था : हम लोग आराम-तलब हो गये हैं, यही हृदय-रोगों का प्रमुख कारण है । जो लोग किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नहीं करते, मानसिक श्रम या बैठे-बैठे आज्ञाएँ देने का ही काम अधिक करते हैं और उसका संतुलन बनाये रखने के लिए उसी परिमाण में शारीरिक श्रम, टहलना, व्यायाम, योगासन आदि नहीं करते, वे ही अधिकतर हृदय-रोगों के शिकार होते हैं । कारण, कोई व्यक्ति शारीरिक श्रम और व्यायाम जितना कम करता है,

उसकी धमनियों के सख्त पड़ने की आशंका उतनी ही अधिक बढ़ जाती है। फलतः उसे हृदय-रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है। मेज पर झुककर कलम से काम करनेवाले व्यक्ति हृदय-रोगों के सबसे अधिक शिकार होते हैं, जब कि शारीरिक परिश्रम करनेवाले सबसे कम।

२. मोटापा : शरीर का आवश्यकता से अधिक मोटा होना हृदय-रोग का एक प्रबल कारण है। ऐसे लोगों के हृदय पर चर्बी छा जाती और जीवनी-शक्ति बहुत कमजोर पड़ जाती है। सभी डॉक्टर इस बात से सहमत हैं कि अतिरिक्त वजन के कारण ही हृदय पर जोर पड़ता है और उसमें विकार पैदा हुआ करते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को रक्तचाप और हृदय के विकार कम होते हैं, क्योंकि उनके शरीर में चर्बी त्वचा के नीचे ही जमा होती है, जब कि पुरुषों के शरीर में धमनियों में भी। चर्बी बढ़ानेवाला भोजन कम करने की वजह से ही हिन्दुस्तान में हुंजा लोग रक्तचाप और हृदय-रोगों से बहुत कम ग्रस्त होते हैं।

३. शहरी जीवन और उसके स्तर का उच्च होना : हृदय के रोग प्रायः शहरी जीवन बितानेवाले उन अमीरों और सेठ-साहूकारों को अधिक होते

हैं, जो धन के अधिक हो जाने से खूब अनाप-शनाप खाते-पीते रहते हैं तथा कोई काम या कसरत नहीं करते। इसीलिए दिल की बीमारी को 'अमीरों की बीमारी' कहा जाता है। इसी प्रकार शहर में रहनेवाले वकीलों, डॉक्टरों, न्यायाधीशों, प्रोफेसरों, वैज्ञानिकों, नेताओं तथा उच्च अधिकारियों को प्राय: हृदय-रोग होते हैं, जिनके जीवन का स्तर सामान्य से उच्च होता है। एक विद्वान् ने सूत्र की तरह एक बार बताया कि जिन लोगों की उपाधियों में 'टर' लगा हो, उन्हें हृदय-रोग होने की अधिक सम्भावना रहती है।

४. **पेटूपन, अप्राकृतिक गरिष्ठ, एवं असंतुलित भोजन** : मांस, मैदा, सफेद चीनी, नशीली चीजें, तेल, खटाई, अचार, मसाला, वनस्पति घी तथा तली-भुनी चीजें गरिष्ठ होती हैं। इनमें प्रत्येक वस्तु हृदय-रोग उत्पन्न करने की पूरी ताकत रखती है, क्योंकि इनके सेवन से रक्त में अम्लता की वृद्धि होती है, जो हृदय-रोग ही नहीं, शरीर के समस्त रोगों का प्रधान कारण है।

पेटूपन या आवश्यकता से अधिक भोजन करने से पाचन-संस्थान में गड़बड़ी हो जाने से शुद्ध रक्त नहीं बन पाता, जिससे हृदय-रोग हो जाता है।

असंतुलित आहार-सेवन के कारण जब रक्त में क्षारता और अम्लत्व का संतुलन बिगड़ जाता है तो उससे अन्य रोगों की तरह हृदय-रोग उत्पन्न होता है।

मांसाहार अप्राकृतिक है। बर्टन ओपिज ने अपने अनुसन्धानों द्वारा सिद्ध किया कि मांसाहारियों के रक्त में केवल अम्लता ही नहीं बढ़ती, बल्कि मांस की अम्लता रक्त को गाढ़ा और लुआबदार भी बना देती है। फलतः जैसे पतले तेल से चलनेवाला पम्प गाढ़ा तेल डालने पर ठीक काम नहीं करता, वैसे ही हृदय से होकर जब वह गाढ़ा और लुआबदार रक्त गुजरता है तो हृदय के स्वाभाविक कार्य में अड़चन पड़ना स्वाभाविक है।

हृदय-रोग के विख्यात विशेषज्ञों का मत है कि मांस, अण्डा आदि किसी भी चर्बीदार चीज के अधिक मात्रा में खाने से ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है, जिससे कोई-न-कोई हृदय-रोग हो जाता है।

वैज्ञानिकों द्वारा संसार में किये गये असंख्य प्रयोगों से जाना गया कि हमारे शरीर की धमनियों में कड़ापन खराब और असंतुलित भोजन से ही आता है। अन्वेषकों के अनुसार धमनियाँ कड़ी पड़ जाने से कुछ

विशेष प्रकार की वसाजातीय वस्तुओं का शरीर में ठीक से पाचन, ओषजनीकरण, परिभ्रमण तथा विर्संजन नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप रक्त में 'क्लोरोस्ट्राल' तथा 'लिपोप्रोटीन्स' नामक दूषित पदार्थ अधिक मात्रा में मिलने लगते हैं, जिससे भयानक हृदय-रोग होने की पूरी आशंका रहती है। जीव-रसायनज्ञों का स्पष्ट मत है कि 'क्लोरोस्ट्राल' विष का सम्बन्ध सीधा हृदय-रोगों से है। अत्यधिक सम्पन्न लोग जब भोजन में दूध, मक्खन, मलाई, अण्डा, पनीर आदि वसाजातीय पदार्थ अधिक मात्रा में प्रयोग करते हैं और श्रम-व्यायाम आदि नहीं करते तो दूषित 'क्लोरोस्ट्राल' उनकी धमनियों में जमकर उन्हें कड़ा कर देता है। फलस्वरूप वे एक-न-एक हृदय-रोग से मृत्युपर्यन्त आक्रान्त रहते हैं या एकाएक हृदय-गति बन्द हो जाने से समय से पूर्व ही दुनिया से कूच कर जाते हैं।

लन्दन के प्रोफेसर जान पुदकिन की अभी हाल में की गयी खोजों से भी यही सिद्ध हुआ है कि भोजन में आवश्यकता से अधिक मिठाई, केक, बिस्कुट, पेस्ट्री आदि जब प्रयुक्त होते हैं तो ये सभी शारीरिक क्रियाओं द्वारा वसा के रूप में एकत्र हो जाते हैं और कालान्तर में धमनियों का कड़ापन उच्च रक्तचाप

तथा 'कारोनोरी थ्राम्बोसिस' जैसे निर्दयी और प्राणलेवा रोगों को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

हृदय की इतनी बड़ी दुश्मन वसा का विश्लेषण करने पर पता चला है कि इसमें अनेक अतिसिक्त (सैचुरेटेड) और अनतिसिक्त (अनसैचुरेटेड) वसा-अम्लों का मिश्रण होता है। नारियल का तेल, मक्खन तथा मांसवाले पदार्थों में अतिसिक्त वसा-अम्ल का अनुपात ऊँचा रहता है, जिसके कारण रक्त में थक्के उत्पन्न हो जाते हैं जो धमनियों में अवरोध पैदा करते हैं। इसके विपरीत सोयाबीन या सूर्यमुखी के बीज के तेल-सरीखे अनतिसिक्त वसा-अम्लों के मिश्रण से शरीर में 'एथीरोमा' अर्थात् रक्त में थक्के पड़ जाने की स्थिति उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न हुई स्थिति कम भी हो जाती है। वनस्पति घी रक्त-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करनेवाला एक प्रबल रासायनिक शत्रु है। इसमें प्रयुक्त होनेवाले मूँगफली और तिल के तेल रासायनिक संरचना के अनुसार अनतिसिक्त वसा-अम्लों के मिश्रण हैं। पर वनस्पति घी बनाने की प्रक्रिया में वे अम्ल अतिसिक्त हो जाते हैं और इस प्रकार अपनी असली अवस्था में हानि-रहित या शरीर के लिए उपयोगी तेल भी हानिकारक बन जाते हैं।

५. **औषधियों का अधिक सेवन :** औषधियों का अधिक सेवन, विशेषकर एलोपैथिक औषधियों के अधिक सेवन से हृदय को निश्चित रूप से क्षति पहुँचती है। हकीमों के कुश्ते, वैद्यों के भस्म और आसव तथा एलोपैथों की ज्वर-नाशक औषधियाँ (Antipyreties) आदि सभी हृदय पर बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं। अरक्त ज्वर या गठिया ज्वर में जो हानि पहुँचती है उसके लिए ज्वर नहीं, वे दवाइयाँ उत्तरदायी होती हैं, जो उस समय ज्वर और पीड़ा दूर करने के लिए दी जाती हैं। वे दवाइयाँ केवल हृदय के कार्य में ही बाधक नहीं होतीं, प्रायः हृदय के ढाँचे को भी इतनी हानि पहुँचाती हैं कि फिर उसे सँभालना या सुधारना असम्भव हो जाता है। 'सोड़ासैलीसाइलिट' पीड़ा दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है। किन्तु प्रत्येक डॉक्टर यह अवश्य मानेंगे कि यह दवा अति तीक्ष्ण और उत्तेजक है। इसका हृदय पर अत्यन्त भयानक प्रभाव पड़ता है। यही दशा 'एस्प्रोन', फीनस्टीन आदि औषधियों की है, जिन्हें हम स्नायविक (Neuralgic) या दूसरी प्रकार की पीड़ाएँ दूर करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। 'डिजीटोलिस' तथा 'स्ट्रिकनिया', जो हृदय की धड़कन को कम या अधिक करने के लिए खिलायी

जाती है, वहुत ही हानिकारक होती है। फिर भी धड़ल्ले से इनका प्रयोग हो रहा है।

६. बढ़ा हुआ रक्तचाप, संक्रामक तथा अन्य रोग :

हमारे शरीर के विभिन्न भागों से हृदय का वड़ा घनिष्ठ सम्वन्ध होता है। अत: जव शरीर का कोई भाग या अवयव रुग्ण होता है तो उसका वुरा प्रभाव हृदय पर पड़े विना नहीं रहता। डॉक्टर अलवर्ड का मत है कि वढ़े रक्तचाप से किसी भी समय हृदय का कोई भी रोग होकर जीवन समाप्त हो सकता है। रक्त का दवाव तव मुसीवत वन जाता है, जव वह वहुत अधिक हो जाता है और लम्वे समय तक वैसा ही वना रहता है। उस समय वह दिल को फैला देता है, जिससे रक्त को हरकत में रखने के लिए वहुत श्रम करना पड़ता है। वढ़ा रक्तचाप उस वक्त खतरा वन जाता है, जव रोगी की रक्तनलिकाएँ वहुत कठोर भी पड़ जाती हैं।

हृदय-रोगों का कारण संक्रामक रोग भी होता है, जिसमें गर्मी, गठिया तथा सूजाक मुख्य हैं। गठिया का ज्वर प्रायः गले की गिल्टी (Tonsillitis) के कारण शुरू होकर हृदय-रोग का रूप धारण कर लेता है। ज्वर के वार-वार आक्रमण से हृदय की

पेशियाँ खराव हो जाती हैं तथा कभी-कभी हृदय के वल्व और कपाट में भी खरावी पैदा हो जाती है।

सूजाक के कीड़े (Treponemapallidum) रक्त में प्रवेश पाते ही महाधमनियों पर आक्रमण करते हैं और धीरे-धीरे हृदय को क्षति पहुँचाते हैं। स्ट्रेपवैक्टीरिया (Streptbacteria) मुख्यतया आपरेशन के समय, वच्चा होने के वाद, दाँत निकलते समय, निमोनिया, गर्दनतोड़ वुखार तथा कण्ठरोग जैसे गम्भीर रोगों के पश्चात् रक्त में प्रवेश करते हैं और हृदय के आन्तरिक आवरण में विकार पैदा करते हैं।

रक्त-संचार की नाड़ियों-सम्वन्धी रोगों में धमनियों और उनकी शाखाओं का कड़ापन प्रमुख है, जिसका कारण है, दीवारों के तन्तुमय ऊतकों का वढ़ना एवं भीतरी सतह पर चूना, लवण तथा चर्वी का धीरे-धीरे जमना, जिनमें क्लोरोस्ट्राल मुख्य है। इस क्रिया से धमनियाँ तथा धमनियों का भीतरी व्यास घट जाता है। इससे रक्तचाप वढ़ जाता है। हृदय-रोग में ९० प्रतिशत मृत्यु का कारण यही होता है।

शरीर के अंगों का कार्य सुचारु रूप से चलना रक्त के सुचारु रूप से संचार पर निर्भर करता है,

क्योंकि रक्त ही शरीर के अंगों एवं तन्तुओं को आक्सीजन तथा अन्य पोषक पदार्थ निर्बाध रूप से प्रदान करता है और कार्बन-डाई-आक्साइड एवं अन्य निरर्थक तत्त्वों को शरीर से गन्दे तत्त्वों को बाहर निकालनेवाले अंगों अर्थात् फेफड़ों, पेडू, त्वचा और अँतड़ियों तक पहुँचाता है। धमनियाँ तथा धमनिकाएँ कड़ी होने एवं उनका व्यास छोटा होने पर रक्त-संचार में रुकावट हो जाती है और शरीर के अंगों को आक्सीजन एवं पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते। फलस्वरूप इन अंगों की मांसपेशियाँ दर्द करने लगती हैं। उस दशा में हृदय भी रोगाक्रान्त हुए बगैर नहीं रहता। कारण हृदय को भी पोषक पदार्थ तथा आक्सीजन की काफी मात्रा में जरूरत पड़ती है, जो महाधमनी (Aorta) से निकलनेवाली कोरोनरी धमनी से लाये रक्त द्वारा मिलते हैं। इस कोरोनरी धमनी के कारण हृदय के काफी रोग हो रहे हैं, जिनमें धमनियों का कड़ापन तथा उनके व्यास का घटना मुख्य है।

धमनियों द्वारा रक्त का दिल को वापस आना महत्त्वपूर्ण है। इस विरुद्ध दबाव के कारण गुर्दों को रक्त से पूरा भोजन न मिलने से वे अपना कार्य रक्त से पानी तथा लवण का ग्रहण करना पूरी तरह नहीं

कर पाते । 'अल्बुमन' जैसे मूल्यवान् पदार्थ मूत्र में मिल जाते हैं और यूरिक-एसिड आदि जैसे अनावश्यक पदार्थ अलग नहीं किये जाते हैं, इसलिए वे तन्तुओं में जमने लगते हैं । इससे पैरों तथा टखनों में सूजन आ जाती है । इस प्रकार तन्तुओं में अत्यधिक द्रव का होना 'ड्रोप्सी' कहलाता है । फेफड़ों का रक्त-संचार भी इस प्रकार के द्रवं के जमने से हृदय-गति रोकने का कारण वन जाता है । जब वायु फेफड़ों में नहीं पहुँच पाती और श्वास पूर्ण रूप से नहीं ली जाती तो खाँसी होने लगती है । लेटते समय इस प्रकार दम घुटना वहुत ही कष्टदायक होता है । इसी प्रकार यकृत में भी रक्त की क्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप यकृत् वढ़ जाता है । कुछ वर्षों तक तो सभी अंग इस प्रकार के हृदय-रोगों का सामना करते रहते हैं, किन्तु रोग वढ़ जाने पर मनुष्य वेकार हो जाता है और अन्त में मर जाता है ।

उपर्युक्त रोगों की भाँति ही वहुधा वात-ज्वर, मधुमेह, निमोनिया, रक्तहीनता राजयक्ष्मा तथा प्लूरिसी आदि के कारण भी जव रक्त विषाक्त हो उठता है, तव हृदय अस्वस्थ हो जाता है और उसकी गति वन्द हो जाने की सम्भावना हो जाती है ।

७. **मानसिक तनाव** : जो व्यक्ति सदैव थका-थका और तनाव की हालत में रहता है, उसका हृदय कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता । डॉक्टरों का कहना है कि मानसिक तनाव अथवा मनोभाव के दवाव के कारण एड्रेनल ग्रन्थियों से रक्त-प्रणाली में एड्रेनलिन स्रवित होने लगता है । इससे लघुतर रक्त-नलिकाओं में संकोचन हो जाता है । इस अवरोध के सामने रक्त-संचालन की सामान्य गति वनाये रखने के लिए हृदय, नाड़ी की गति एवं रक्तचाप को द्रुततर कर देता है । जव एड्रेनलिन के स्राव के कारण कोरोनरी रक्त-कोषाणु संकुचित हो जाते हैं, तो हृदय की पेशियाँ अपने लिए आवश्यक रक्त की खपत से वंचित रह जाती हैं और परिणामस्वरूप हृदय-पीड़ा का वोध होता है ।

प्रकृति की यह इच्छा रहती है कि एड्रेनलिन की अतिरिक्त मात्रा से हमें अतिरिक्त शक्ति एवं स्फूर्ति मिले, जिससे मनोभावों को श्रमिक करने का उचित मार्ग प्राप्त हो सके । आदिम मनुष्य को इस अतिरिक्त शक्ति के कारण वन्य पशुओं पर विजय प्राप्त करने की वड़ी सहायता मिलती थी । आज के युग में भी मनुष्य जव अग्नि वुझाने का प्रयास करता या गाड़ी के सामने आते वच्चों को वचाने के लिए दौड़ता है तो यही एड्रेन-

लिनजनित अतिरिक्त शक्ति उसकी सहायता करती है। किन्तु ऐसे तनाव जैसा सारा-का-सारा जीवन एक आपदा ही है, जो मनुष्य के लिए नैसर्गिक नहीं है।

वास्तव में हानि का प्रारम्भ हृदय पर आक्रमण होने से बहुत पहले ही हो चुका होता है। रक्त-नलिकाएँ भित्तियों पर जमा होनेवाले वसायुक्त पदार्थ से पर्याप्त समय से संकुचित होती रहती हैं और खुरदरी सतह पर रक्त-कण अधिक आसानी से जमने लगते हैं।

आज हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि मानसिक तनाव रक्त-कोषाणुओं पर तो अपना प्रभाव डालता ही है। वे वसा के समावर्तन में बाधा डालकर और रक्त-प्रणाली को 'क्लोरोस्ट्राल' नामक चिकने पदार्थ से (जिसका जिक्र पहले हो चुका है) लादकर उसके संकुचन की प्रतिक्रिया को द्रुततर कर देता है। एक डॉक्टर ने हवाईजहाज के चालकों के रक्त के क्लोरोस्ट्राल के स्तर की संतुलित एवं तनावपूर्ण दोनों अवस्थाओं में जाँच की। तनावपूर्ण अवस्था में कुछ चालकों में यह स्तर उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया। शान्त स्थिति के एक चालक का स्तर १९० था, किन्तु जब उसने समाचार सुना कि उसके इकलौते पुत्र की मृत्यु हो गयी तो वह स्तर एकाएक ३८० हो गया।

जो लोग दिमागी परेशानी और तनाववाले काम करते हैं, वे अक्सर दिल का दौरा पड़ने के शिकार हो जाते हैं। जीवन में निराशाएँ, जुआ, सट्टे में हार, अधिक परीक्षाएँ, चिड़चिड़ापन, महत्त्वाकांक्षाएँ, हठ, जीवित रहने की उत्कण्ठा तथा वेकारी की उलझनें आदि दिमागी परेशानियों के उदाहरण हैं।

८. शक्ति से अधिक श्रम करना : अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम करना तथा परिश्रम करने के वाद पर्याप्त विश्राम न कर पुन: परिश्रम करने लग जाना, दोनों से हृदय दुर्बल हो जाता है। शक्ति से अधिक परिश्रम करने से शरीर के अन्य किसी अंग पर इतना जोर नहीं पड़ता, जितना कि हृदय पर। अधिक मेहनत के कार्य से हृदय की धड़कन प्रति मिनट ७२ की साधारण गति से अधिक हो जाती है और साथ ही धमनियों में रक्त-प्रवाह भी वढ़ जाता है। इस प्रकार की अवस्था स्वस्थ हृदय तो आसानी से सह लेता है, पर यदि वह तनिक भी कमजोर हुआ तो सह नहीं पाता और अस्वस्थ हो जाता है।

९. अपर्याप्त विश्राम और असंयत निद्रा : थकावट के वाद पर्याप्त विश्राम और निद्रा द्वारा उस थकावट को मिटाकर शरीर को ताजा कर लेना चाहिए।

जो ऐसा नहीं करता और सदा थका एवं तनाव की दशा में रहता है, उसका हृदय कदापि स्वस्थ नहीं रह सकता। लेकिन यह भी सही है कि जो व्यक्ति १० घण्टे या इससे अधिक सोते हैं, उन्हें सात घण्टे तक सोनेवाले व्यक्तियों से अधिक हृदय-रोग होने की सम्भावना रहती है। यह निष्कर्ष अमेरिकी कैंसर-संस्था ने ६ साल तक आठ लाख पुरुषों और महिलाओं का अध्ययन करने के बाद निकाला है। इस तरह आवश्यकता से अधिक निद्रा और कम निद्रा दोनों ही हृदय-रोगों के कारण हैं।

१०. नशे की लत : शराबियों, अफीमचियों आदि नशेबाजों का हृदय खराब अवस्था में होता है। इनकी मौतें भी अक्सर हृदय-रोगों के कारण ही हुआ करती हैं। काफी और चाय में 'कैफीन' होती है, जिससे नब्ज की गति और हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। फलतः हृदय के स्वाभाविक कार्य में अस्वाभाविकता आ जाती है, जिससे उसे क्षति पहुँचती है। तम्बाकू के प्रयोग से रक्त-नलिकाओं में सिकुड़नें पैदा हो जाती हैं। तम्बाकू के सेवन से रक्त का दबाव बढ़ जाता है, इसलिए उससे हृदय पर बहुत बोझ पड़ता है। आँकड़ों से यह सिद्ध है कि अधिक सिगरेट पीनेवाले उन लोगों की अपेक्षा, जो बहुत कम सिगरेट पीते हैं या एकदम

नहीं पीते, दूनी संख्या में दिल के रोगों से पीड़ित होते हैं।

११. आनुवंशिकता : वंश-परम्परा के दोष के कारण भी अक्सर हृदय-रोग होते देखे गये हैं। अर्थात् कुछ परिवारों के कई सदस्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी हृदय-रोग से पीड़ित होते रहते हैं। इसका कारण यह है कि ऐसे परिवारों के सदस्य पचासों सालों से गलत आहार-विहार तथा स्वास्थ्यसम्बन्धी अन्य गलतियों को दोहराते चले आते हैं, जिनको उनके पूर्वज करते रहे।

१२. वृद्धावस्था : हृदय की मांसपेशियों को पोषक तत्त्वों से भरा-पूरा ताजा रक्त पहुँचाने का काम दो धमनियाँ अंजाम देती हैं, जिन्हें 'हृदय-धमनियाँ' कहते हैं। लड़कपन और जवानी में ये धमनियाँ नरम और लचीली होती हैं। इनका स्तर सपाट और चिकना होता है और भीतरी मोहरी खुली, कुशादा और चौड़ी रहती है। उमर बढ़ने के साथ-साथ धमनियाँ सख्त होती जाती हैं। उनका अस्तर मोटा होता जाता है। उस पर सफेद खुरदरे चकत्ते पड़ जाते हैं। भीतरी मोहरी बराबर सँकरी होती जाती है। हृदय कुछ बढ़ जाता है और वजनी भी हो जाता है। जब किसी धमनी में रक्त के बहने का रास्ता बहुत ही सँकरा हो जाता है;

तो रक्त किसी चकत्ते पर जमने लगता है और एक थक्के की शक्ल ले लेता है। अगर यह थक्का इतना बड़ा हो जाय कि रक्त-प्रवाह के मार्ग को अवरुद्ध कर दे, तो हृदय को ताजा रक्त का मिलना बन्द हो जायगा। फिर ओषजन एवं पोषण के अभाव में हृदय अपना काम बन्द कर देगा और आदमी मर जायगा।

१३. गर्भावस्था : गर्भावस्था में अधिक जोर पड़ने पर अस्वस्थ हृदय की पेशियों के तन्तु फैलने तथा मोटे होने लगते हैं। परिणामस्वरूप हृदय आकार में बढ़ जाता है और धड़कन तेज तथा कमजोर हो जाती है। तन्तुओं के लचक की भी एक सीमा होती है, जिससे अधिक वे नहीं फैल सकते। हृदय का आकार आवश्यक रक्त-प्रवाह को बनाये रखने के लिए धीरे-धीरे बढ़ता रहता है, पर जब सीमा से आगे बढ़ना सम्भव नहीं होता तब वह अपना काम बन्द कर देता या रुग्ण हो जाता है।

गर्भ के अन्तिम मास में गर्भ के बोझ का प्रभाव प्रायः गर्भिणी के हृदय पर पड़ता है। यहाँ तक कि गर्भ के नवें मास में हृदय को 'नार्मल' से ५० प्रतिशत अधिक कार्य करना पड़ता है। जिन स्त्रियों का हृदय सामान्य होता है, वे तो गर्भ के बोझ को सह लेती हैं, किन्तु कमजोर दिलवाली स्त्रियों के लिए यह बोझ

उनके हृदयों को रोगी बना देने का कारण सिद्ध हो सकता है।

१४. **अधिक वीर्यक्षय :** ४५ वर्ष के बाद यौनशक्ति का प्रयोग अधिक करने से अथवा अधिक वीर्य-क्षरण से हृदय-रोगों की सम्भावना होती है। जवानी के दिनों भी अधिक वीर्य-क्षय से हृदय कमजोर हो सकता है।

१५. **अधिक गरमी :** गरमी अधिक पड़ने, अधिक परिश्रम करने तथा भारी पोशाक आदि धारण करने से शरीर की गर्मी बढ़ जाती है, जिसे 'नार्मल' पर लाने के लिए हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसा करने से कमजोरी के कारण हृदय अस्वस्थ हो सकता है।

१६. **अधिक ठंडक :** अत्यधिक ठंडक में भी शरीर को गरम रखने के लिए हृदय को कम मेहनत नहीं करनी पड़ती। फलतः वह प्रायः अस्वस्थ हो जाता है।

५. हृदय-रोगों से कैसे बचें ?

स्पष्ट है कि पिछले प्रकरण में उल्लिखित हृदय को अस्वस्थ करनेवाले कारणों को दूर कर देना हृदय-रोगों से बचे रहने का सबसे अच्छा उपाय है। फिर भी बचाव के कुछ अन्य उपाय भी हैं, जिन्हें जान लेना उत्तम होगा।

हृदय-रोगों से बचे रहने के लिए प्रतिदिन किसी प्रकार का शारीरिक श्रम करना या कोई व्यायाम करना अति आवश्यक है। साधारण व्यायाम की जगह उपयोगी यौगिक व्यायाम भी किये जा सकते हैं। नियमित व्यायाम अथवा श्रम किसी भी उम्र में आरम्भ किया जा सकता और जारी रखा जा सकता है। श्रम एवं व्यायाम से हृदय को शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है। यदि हमारे शरीर की मांसपेशियाँ स्वस्थ तथा चुस्त हैं, तो हृदय की मांसपेशियाँ भी निश्चय ही सशक्त होंगी। किन्तु यदि हमारे शरीर की मांस-पेशियाँ कमजोर एवं सुस्त होंगी, तो हृदय भी कमजोर होगा। इस सिद्धान्त के प्रकाश में हम जोर देकर

कह सकते हैं कि नियमित परिश्रम और व्यायाम से हृदय-रोगों से सुरक्षित रहा जा सकता है। ब्रिटेन के चिकित्सालयों में हृदय के रोगों के एक बार आँकड़े लिये गये। ज्ञात हुआ कि जिन व्यक्तियों का दैनिक कार्य हल्का है (उदाहरणार्थ—शिक्षक, क्लर्क आदि), वे उन लोगों से तीन गुना अधिक हृदय के रोगों से पीड़ित होते हैं, जिनका कार्य कठोर और मशक्कत का होता है (जैसे : मजदूर एवं किसान-वर्ग)। साथ ही यह भी पता चला कि हल्का कार्य करनेवाले की आयु कम होती है, जब कि कठोर श्रम करनेवालों की आयु अधिक होती है।

हृदय-रोगों से बचने के लिए पैदल चलना और प्रातः-भ्रमण सर्वोत्तम व्यायाम माना गया है। लेकिन हममें से बहुत-से लोग सुबह से लेकर १०-११ बजे रात तक अपने कार्य में लगे रहते हैं। टहलने के लिए उन्हें जरा भी समय नहीं मिलता। ऐसी दशा में यदि वे हृदय-रोगों से पीड़ित हों तो क्या आश्चर्य है ?

पैदल चलने या प्रातः-भ्रमण के अलावा हृदय-रोगों से बचने के लिए अन्य व्यायाम भी किये जा सकते हैं। किन्तु प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि हृदय के लिए सबसे अच्छा व्यायाम वह है, जो ओपजन की माँग की

पूर्ति करता है। अर्थात् शरीर को बाध्य करता है कि वह अत्यधिक ओषजन ले। इस प्रकार का व्यायाम करने से हृदय ताकतवर बनता है। इससे वह प्रत्येक धड़कन के साथ अपेक्षाकृत अधिक रक्त फेंकता है, जिससे धड़कनों की संख्या में कमी हो जाती है और हृदय को काफी आराम मिल जाता है। हृदय प्रतिरात निद्रा-वस्था में १०००० धड़कनें और प्रतिदिन जागृत-अवस्था में लगभग ३०००० धड़कनें बचा लेता है। वास्तव में मनुष्य की आयु इन्हीं धड़कनों से नपी रहती है। उसके जीवन की अवधि या नाप ही यह है कि उसके हृदय को कुल कितनी बार धड़कना पड़ता है। धड़कनों की उपर्युक्त वचत से निश्चय ही उसकी उम्र भी बढ़ जाती है।

यह मालूम करने के लिए कि आपके शरीर को या आपके हृदय को व्यायाम की जरूरत है या नहीं, कृपया शान्तचित्त होकर चुपचाप बैठ जाइये। इसके बाद अपने ही हाथ की नाड़ी पर दूसरे हाथ की उँगलियों को रखकर नाड़ी की गति (धड़कनों) को गिनिये। यदि वह गति एक मिनट में ८० बार या उससे अधिक हो तो समझ लीजिये कि आपका स्वास्थ्य कोई बहुत अच्छा नहीं है। ऐसी स्थिति में आपको कुर्सी या गद्दी

का मोह छोड़कर प्रतिदिन उचित व्यायाम करने लग जाना चाहिए। इस प्रकार आप अपने हृदय को सम्भवत: प्रतिदिन २०००० से ३०००० तक अतिरिक्त या व्यर्थ की धड़कनों के अनावश्यक परिश्रम से बचा सकेंगे। व्यायाम करने से ज्यों-ज्यों हृदय अधिकाधिक मजबूत होता चलेगा, त्यों-त्यों उसे अधिक काम करने की क्षमता प्राप्त होगी और वह शक्तिशाली बनेगा।

जो चाहते हैं कि हमें कोई हृदय-रोग न हो, उन्हें अतिभोजन से बचना चाहिए। उन्हें अधिक मात्रा में भोजन कदापि नहीं करना चाहिए, विशेषकर चर्बी-वाले भोजन। शरीर में ६०० से अधिक पेशियाँ हैं। चर्बी की मात्रा बढ़ जाने से ये पेशियाँ सुचारु रूप से अपना काम नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप नसों द्वारा गंदे रक्त के हृदय में लौटने की क्रिया में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है, जिससे वह थक जाता है। द्वितीय महासमर के जमाने में लेनिनग्राड के लोगों की तीन वार परीक्षा की गयी। पहली परीक्षा नगर का अवरोध होने के पहले की गयी। दूसरी अवरोध के समय, जव खाद्य-पदार्थों का बहुत टोटा था। तीसरी परीक्षा अवरोध उठा लेने के वाद की गयी। परीक्षकों को यह देखकर

आश्चर्य हुआ कि अवरोध के समय भुखमरी की-सी अवस्था में तो जो लोग हृदय-रोगों से पीड़ित थे, वे बिलकुल चंगे हो गये। अवरोध के हटते ही खाद्य-पदार्थ पूर्ववत् अधिकता से मिलने लगे, पर वे हृदय-रोग अवरोध के पहले की तरह फिर मौजूद हो गये। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक भोजन ही हृदय के रोगों का मुख्य कारण हुआ करता है। अतिभोजन और अयुक्तभोजन के फलस्वरूप चर्बी शरीर में जमा हो जाने से ही नहीं, आमाशय और यकृत में खाद्य-पदार्थों के अधिक मात्रा में मौजूद रहने से इन अंगों में रक्त बहुत अधिक पहुँच जाता है और अन्य अंग रक्त के अपने उचित भाग से वंचित रह जाते हैं। वंचित होनेवाले अंगों में हृदय भी है। फिर भी उसे तो काम अधिक करने के लिए बाध्य होना ही पड़ता है, रक्त पम्प करके संचालित रखना ही पड़ता है। ऐसी दशा में उसका थक जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हृदय थक जाने पर सारे शरीर के कार्य में मंदता आ जाती है। उसके बाद भी यदि अतिभोजन जारी रहा, तो हृदय के लिए ठीक तौर से काम करना असम्भव हो जाता है।

हृदय के रोगों की रोक-थाम बचपन में ही शुरू

हो जानी चाहिए । छोटे बच्चों को कभी भी आवश्यकता से अधिक नहीं खिलाना चाहिए । उन्हें दूध और पानी-मिले संतरे या टोमाटो के रस के अलावा कुछ भी नहीं देना चाहिए । अगर उन्हें स्तन्यपान न कराया जाता हो, तो गाय का दूध थोड़ा शहद मिलाकर देना चाहिए और उसमें थोड़ा पानी भी मिला देना चाहिए, ताकि वह आसानी से पच जाय । अवस्था कुछ अधिक होने पर उन्हें कुछ दिनों तक फलों का रस विशेष रूप से दिया जाय । पहले वर्ष में बच्चों को दूध, फल और तरकारी के अलावा और कुछ नहीं देना चाहिए । बच्चों को यदि ठूस-ठूसकर न खिलाया जायगा, तो वे चर्म-रोग, सर्दी, जुकाम तथा हृदय-रोगों से बचे रहेंगे। ये सभी रोग अतिभोजन के ही परिणामस्वरूप होते हैं । दूसरा साल पूरा होने के पहले बच्चों को दूध, फल-तरकारी, भुने हुए आलू और चोकरदार आटे की रोटी के अलावा और कुछ नहीं देना चाहिए । मांस, मैदे तथा सफेद चीनी से बनी चीजें देने का तो खयाल भी नहीं करना चाहिए ।

युवक लोग चाहें तो फल-तरकारियों की मात्रा अधिक रखते हुए सब तरह का अन्न भी खा सकते हैं । फिर भी अन्न से बनी चीजों के सम्बन्ध में यह खयाल

रखना जरूरी है कि वे पाक-क्रिया द्वारा निर्जीव न बना दी गयी हों। रोज दिन में कम-से-कम ५ से ८ गिलास तक पानी पीने का भी ध्यान रखना चाहिए। लेकिन भोजन के समय या तो बिलकुल ही नहीं, या बहुत कम जल पीना चाहिए; भोजन करते समय जल पीने से पाचन-क्रिया मंद पड़ जाती है।

मिनीसोड़ा विश्वविद्यालय में डॉक्टर ऐकेलकी, जिन्होंने कारोनरी थ्राम्बोसिस रोगों के कारणों के बारे में असंख्य खोजें की हैं, लिखते हैं: "यदि हम हृदय के रोगों से बचना चाहते हैं, तो हमें विलासी और गरिष्ठ भोजन से बचना चाहिए, जिसमें वसा, मांस, तले-भुने पदार्थ आदि का बाहुल्य रहता है।"

हृदय की संकुलता की अवस्था में बाहरी नमक से परहेज करना बहुत लाभदायक होता है; क्योंकि नमक में तन्तुओं में जल रोक रखने की प्रवृत्ति होती है, जिससे कमजोर दिल को रसों को पम्प कर वृक्कों में पहुँचाने में बड़ी कठिनाई होती है। सोडियमवाले खाद्य-पदार्थ—दूध, सोडा आदि त्याग देना या बहुत कम कर देना भी आवश्यक है। कुछ लोग चावल के साथ विटामिनों और खनिज लवणों की प्राप्ति के लिए फल और तरकारियाँ खाने की राय देते हैं। यह आहार प्रायः

रक्तचाप और हृदय पर जोर कम करने में नमक छोड़ने की ही तरह प्रभावकर सिद्ध होते देखा गया है । दिन में दो बार अधिक-से-अधिक न खाकर चार-पाँच बार थोड़ा-थोड़ा खाना अच्छा समझा जाता है । इससे हृदय का पाचन-सम्बन्धी कार्य-भार हलका हो जाता है ।

विटामिन बी, डी तथा ई और कैलशियमवाले पदार्थ तथा दही, शहद एवं अंकुरित अन्न हृदय-रोगों को दूर रखने में जादू का काम करते हैं ।

अतिभोजन के बाद मानसिक तनाव, विशेषकर जवानी में, हृदय-रोगों का मुख्य कारण हुआ करता है । अतः इससे बचना चाहिए । भय, परेशानी, चिन्ता आदि ध्वंसक मनोभाव मानसिक और स्नायविक तनाव के अन्तर्गत ही आते हैं । जीवन का रचनात्मक दृष्टिकोण, जिसमें सारा संसार मित्र की दृष्टि से देखा जाता है, मानसिक तनाव रोकने में बहुत प्रभावकर होता है । जिनका जीवन रचनात्मक होता है, उन्हें डरने अथवा परेशान होने आदि के लिए समय ही नहीं मिलता । फलतः उनमें मानसिक तनाव नहीं आ पाता और उनका दिमाग सुलझा तथा ठंडा रहता है । डॉ० राधाकृष्णन् ने भी कुछ वर्ष पहले भारत में आयोजित हृदय-विशेषज्ञों के पाँचवें सम्मेलन को

सम्वोधित करते हुए कहा था कि हृदय के दौरों से वचने का सबसे अच्छा तरीका शान्त एवं सादा जीवन व्यतीत करना तथा हर प्रकार के भावात्मक उद्वेगों और दवावों से वचना है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध हृदय-विशेषज्ञ डॉ० इरविनपेज का भी यही कथन है कि हृदय-रोग से वचने का सबसे वड़ा उपाय आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति है। उनका विश्वास है कि प्रयत्न करने से इस प्रकार की शान्ति प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए मनुष्य को ऐसा वनना चाहिए कि वह ऐसे जीवन-दर्शन की प्राप्ति करने में समर्थ हो जाय, जो उसके जीवन को सार्थकता प्रदान करे और क्षयशील तत्त्वों को नष्ट कर दे।

शान्ति की उपलब्धि मधुर भावों—जैसे सौन्दर्य, आदर्श तथा परोपकार आदि द्वारा भी हो सकती है। मेरे एक मित्र हैं, उनका व्यापार आजकल खूव वढ़ा-चढ़ा है। कुछ दिन हुए, वे दिल के दौरे से पीड़ित हुए थे, पर दैवयोग से वच गये। उस दिन को वह अपना वास्तविक जन्मदिन मानते हैं, क्योंकि उस दिन उन्हें जीने की सच्ची कला हाथ लगी। दिल का दौरा पड़ने से पहले वे अपना व्यवसाय वढ़ाने के लिए वहुत चिन्तित रहते थे और रात-दिन कार्य में व्यस्त रहते थे।

पर दिल के दौरे से जिस दिन बचे, उस दिन से उन्होंने अपने काम के घण्टे बहुत कम कर दिये और चिन्ता करनी भी छोड़ दी। परिणाम यह हुआ कि उनके व्यापार में अधिक उन्नति भी हुई और फिर कभी उन्हें दिल का दौरा भी नहीं पड़ा। ●

६. हृदय-रोग के लक्षण

हृदय-रोगों के लक्षण साधारणतः सबकी समझ में नहीं आते, रोगी की समझ में भी नहीं। इसलिए अच्छा यही है कि जब कभी किसी हृदय-रोग के होने की शंका हो, तो किसी चिकित्सक से स्वास्थ्य की जाँच कराकर उसका समाधान करा लिया जाय।

कुछ डॉक्टरों का मत है कि ऐसे व्यक्ति को पहले से पहचान लेना कठिन नहीं, जो किसी हृदय-रोग से पीड़ित होनेवाला है। डॉक्टर फ्रीडमैन और डॉक्टर रोजमैन ने, जिन्होंने इस प्रकार के सैकड़ों रोगियों की परीक्षा की है, निश्चयपूर्वक बताया है कि ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी आतुर हो जाते हैं। बातचीत करते समय वे मुट्ठियाँ बाँध लेते हैं। कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक काम कर डालना चाहते हैं। समय नष्ट करना उन्हें कभी गवारा नहीं होता। इन डॉक्टरों ने एक ऐसे जल्दवाज रोगी को भी देखा था, जो हजामत का काम जल्दी-से-जल्दी खतम कर डालने के लिए एक साथ दो रेजरों से दाढ़ी बनाता था। हृदय-घात तैयार

कर रहे व्यक्ति केवल किसी-किसी काम में ही नहीं, हर काम में जल्दी मचाते हैं। वे जव भी किसीसे वातें करते हैं, उनकी दृष्टि घड़ी पर होती है। उपर्युक्त डॉक्टर अपने रोगियों से वात करते समय इस वात पर ध्यान देना न भूलते थे कि वातचीत के दौरान वे कितनी बार घड़ी देखते हैं। कुछ रोगी तो आधे घण्टे में १६-१६ वार तक घड़ी पर नजर डाल लेते थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, हृदय के विकार-वाले का आकर्षक मुखमण्डल, सुडौल शरीर तथा उत्तम स्वास्थ्य होने से स्वयं उसे तथा अन्य व्यक्तियों को तनिक भी संदेह नहीं होता कि यह व्यक्ति हृदय-विकारवाला है या इसे हृदय-रोग होनेवाला है। किन्तु योगाभ्यास में पारंगत तथा प्राकृतिक चिकित्सा के जानकार लोग हृदय-विकारवाले को देखते ही समझ लेते हैं कि अयुक्त व्यक्ति हृदय-विकार से त्रस्त है या उसे हृदय-विकार होनेवाला है।

वक्षस्थल से आगे की ओर, यदि पेट का भाग वढ़ जाय यानी तोंद निकल आये, तो हृदय-विकार के होने की सम्भावना हो जाती है।

सीढ़ियों पर चढ़ने से यदि आपका दम फूलने लगता

है, तो आप अपने हृदय के स्वास्थ्य को परखने के लिए एक स्टूल पर २०-२५ वार जल्दी-जल्दी चढ़िये और उतरिये। इस कार्य को आरम्भ करने से पहले आप अपनी नाड़ी की गति को गिन लें, उसके एक मिनट वाद फिर नाड़ी की गति गिनें। यदि वह पहली गिनती के समान आ गयी, तो आपका हृदय स्वस्थ है, पर यदि आपकी नाड़ी उस वक्त तक तेज है तथा साँस भी फूल रही है, तो जानिये कि आपके हृदय में दोष उत्पन्न हो चुका है।

यदि थोड़ा काम करने पर भी आपकी साँस फूलने लगती है तथा टखनों पर सूजन हो आती है, तो इन्हें हृदय-रोग के लक्षण समझिये।

यदि किसीको उठते-बैठते अक्सर चक्कर आया करें, लेकिन थोड़ी ही देर में सब कुछ ठीक हो जाय, तो उस प्रकार का चक्कर आना निस्सन्देह हृदय-रोग की पहली चेतावनी समझनी चाहिए, जिसे रोगी का बीमार शरीर काफी समय पूर्व से ही देना शुरू कर देता है। यह चेतावनी वास्तव में हृदय-स्थित नाड़ियों में दोष आ जाने के फलस्वरूप पैदा होती है। प्रायः इसीसे मिलता-जुलता लक्षण पेट की पाचन-सम्बन्धी खरावियों का भी है। उस वक्त अनुभवी चिकित्सक

अपनी सूझ-बूझ से वास्तविक स्थिति का पता लगा लेते हैं। अगर थकान और चक्कर आने के लक्षण निरन्तर परिलक्षित हों और दौरे का रूप ले लें, तो उसे निश्चय ही गम्भीर रूप से हृदय अथवा नाड़ी-सम्बन्धी किसी भावी उपद्रव की सूचना समझनी चाहिए। ऐसी स्थिति में तुरन्त किसी कुशल चिकित्सक की राय से उचित जाँच करा लेनी चाहिए।

यदि भोजन करने के तुरन्त बाद पेट में किसी प्रकार की बेचैनी तथा भारीपन का अनुभव हो और वह दौरे का रूप ले ले, तो निश्चय ही चिकित्सक से अपने स्वास्थ्य की जाँच करानी चाहिए। ४० वर्ष की आयु के बाद तो भोजन के बाद बेचैनी का मालूम होना निश्चित रूप से किसी भयानक हृदय-रोग का अग्रदूत होता है।

दिल की बीमारी शुरू होने के वर्षों पूर्व से रोगी एक भयानक और कष्टदायक लक्षण अनुभव करता है। वह है श्वास लेने में कष्ट का होना। यह लक्षण उपर्युक्त वर्णित सभी लक्षणों से कहीं अधिक चिन्तनीय है। इस दृष्टि से यह कहना गलत न होगा कि दमा के रोगी मूलतः हृदय के ही रोगी होते हैं।

हृदय की बायीं ओर या सीने में दर्द होना इस बात

का द्योतक है कि हृदय में या उसके आस-पास कहीं कुछ गड़बड़ है। इसी प्रकार दोनों हाथों का दर्द या सुन्नता भी समझनी चाहिए। ये सब लक्षण हृदय-रोग-सम्बन्धी प्रकृति की आरम्भिक चेतावनियाँ होती हैं, जिनका मतलब है कि निकट भविष्य में खतरा है।

बेहोशी, दिल का अधिक धड़कना, रक्त-संचार का ठीक-ठीक न होना, हाथों-पैरों का ठंडा रहना, चेहरे पर भरभराहट का होना तथा ऐसा मालूम होना, जैसे हृदय को वाहरी वस्तु ढकेल रही है, आदि भी ऐसे ही लक्षण हैं, जिनसे पता चलता है कि हृदय की दशा स्वाभाविक नहीं और किसी भी क्षण वह रोगी हो जा सकता है।

अन्त में यह भी कह दूँ कि चूँकि हृदय-रोग एक भयानक रोग होता है, जिससे आदमी चटपट मर जा सकता है, इसलिए साधारणतः लोग उसके लक्षणों से अत्यधिक घबड़ा जाते हैं। उस घबड़ाहट में वे कुछ ऐसे लक्षणों को, जो वास्तव में सही लक्षण नहीं होते, हृदय-रोग के लक्षण मान बैठते हैं। फलस्वरूप वे सुनी-सुनायी बातों और अपने अधकच्चरे ज्ञान की अटकलों के कारण प्रायः वर्षों तक अपने को दिल का रोगी मानने की यन्त्रणा व्यर्थ ही उठाते

रहते हैं। उनके मस्तिष्क में सदैव ऐसे लोगों के चित्र घूमते रहते हैं, जिनकी मृत्यु असमय में ही हृदय-रोग से हो जाती है। ऐसे लोगों की इस प्रकार की चिन्ता निरर्थक ही नहीं, अपितु कभी-कभी अनर्थकारी भी सिद्ध होती है। कई-कई तो मात्र इस प्रकार चिन्ता के कारण ही हृदय के रोगी न होते हुए भी वास्तव में हृदय के रोगी बन जाते हैं।

७. हृदय-रोगों की तात्कालिक चिकित्सा

हृदय-रोग दो प्रकार का होता है : १. जीर्ण और २. नवीन । नवीन रोग का आक्रमण अचानक होता है । ऐसा आक्रमण होने पर या किसी हृदय-रोग का निश्चय हो जाने पर उस रोग के पूर्व-लक्षणों के प्रकट होते ही रोगी को पूर्ण मानसिक और शारीरिक विश्राम लेने के लिए किसी निर्जन, साफ और हवादार कमरे में साफ विस्तर पर सिर को ऊँचा रख लेटे रहना चाहिए । शरीर पर के कपड़ों को ढीला कर देना चाहिए । उस वक्त रोगी के सामने कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिए या कोई ऐसा शव्द नहीं वोलना चाहिए, जिससे वह उत्तेजित हो उठे । साथ ही उस वक्त तीमारदार और वीमार दोनों को विलकुल घवड़ाना नहीं चाहिए, अपितु धैर्य धारण कर नीचे की विधि से उपचार करना चाहिए, सफलता अवश्य मिलेगी । घवड़ाने से न केवल उपचार में ही अड़चन पड़ती है, वल्कि वह रोग को और अधिक भयंकर भी वना देती है । घवड़ाहट के वशीभूत होकर ऐसे वक्तों पर सवसे वड़ी गलती जो

की जाती है, वह है रोग के लक्षणों को दवा देने के लिए दवाओं का प्रयोग। ऐसा करने से परिस्थिति सुधरने के बजाय और भयंकर हो जाती है। साथ ही इस बात की भी पूरी सम्भावना हो जाती है कि रोगी के मन में आशा और विश्वास उत्पन्न होने के बदले भय और आतंक का आविर्भाव हो जाय।

अत: ऐसे समय हमारा यही लक्ष्य होना चाहिए कि शरीर, विशेषकर हृदय विष-भार (विजातीय द्रव्य) से जल्दी-से-जल्दी मुक्त हो जाय। विषतुल्य औषधि-सेवन की नीति अपनाने से हमारे इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती, क्योंकि औषधि देने से जब औषधि का विष रक्त-प्रवाह में मिश्रित हो जायगा, तो वह अतिरिक्त क्षति पहुँचाकर स्थिति को और भी बिगाड़ेगा, सुधारेगा नहीं। ऐसे मौके पर साधारणत: हृदय को उत्तेजित करनेवाली दवाएँ, खासकर स्ट्रिकनिन या डिजीटेलिस तीन-तीन, चार-चार घण्टे पर दी जाती है, जिसका कुपरिणाम यह होता है कि उत्तेजन की अवस्था में कुछ देर चलने के बाद हृदय में अपना स्वाभाविक कार्य करने की शक्ति नहीं रह जाती और निरोध-शक्ति एकबारगी ही समाप्त हो जाती है। फलत: रोगी की हालत प्रतिक्षण खराब होने लगती है। जब रोगी मरणासन्न

हो जाता है, तो अन्त में उपचार के रूप में ओषजन का प्रयोग किया जाता है और रोगी को उसके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता है। अतः हृदय-रोगों में औषधियों का प्रयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

हृदय-रोगों का आक्रमण होते ही शरीर को विष से मुक्त करने के लिए परिस्थिति पूरी तरह काबू में आने तक रोगी को उपवास कराना चाहिए। अधिक दुर्वल होने पर उसे आवश्यकतानुसार सेव, अंगूर, अनार, संतरा या कागजी नीबू का रस जल और शहद मिलाकर देना चाहिए। उपवास के दिनों में रोगी को गुनगुने पानी का एनिमा देकर उसका पेट साफ कर देना चाहिए। रोज दो बार १५ मिनट से धीरे-धीरे बढ़ाकर एक घण्टे तक हृदय पर बदल-बदलकर भीगे कपड़े की निचोड़ी ठंडी पट्टी रखनी चाहिए। अन्त में उस स्थान को फलालेन आदि किसी सूखे कपड़े से रगड़कर गर्म कर देना चाहिए। श्वास लेने में कष्ट हो या कफ का जोर हो, तो पाँवों को गरम करने के लिए उन पर ऊनी पट्टी या गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। साथ ही हृदय पर भीगे और निचोड़े कपड़े की एक ठंडी पट्टी अलग से रखकर समूची छाती पर १ घण्टे के लिए छाती की गीली लपेट लगानी चाहिए।

इस प्रयोग को हर २० मिनट बाद करना चाहिए। हर बार छाती की लपेट हटाने पर उस स्थान को सूखे कपड़े से रगड़कर गरम कर देना चाहिए। अधिक घबराहट हो, तो पट्टी को बजाय साधारण ठंडे पानी में तर करने के बरफ के पानी में तर कर और निचोड़-कर लगाना चाहिए।

यदि हृदय बैठ रहा हो और धड़कन बन्द होनेवाली हो, तो रीढ़ पर गरम-ठंडा सेंक देना चाहिए और बीच-बीच में स्पंज-बाथ। अथवा गरम पानी में भिगोयी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी से हृदय के स्थान को तब तक सेंकना चाहिए, जब तक कि हृदय की धड़कन अपनी स्वाभाविक अवस्था में न आ जाय। सेंकने के बाद लेटे ही लेटे या टब में बैठकर ५-१० मिनट यदि मेहन-स्नान ले लिया जाय, तो लाभ अधिक और स्थायी होता है। लाल रंग की बोतल के सूर्यतप्त तेल या जल की हृदय पर मालिश तथा पीली बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-आधी छटाक की ८ खुराकें रोज पिलाना दिल के बैठने में बड़ा उपकारी सिद्ध होता है।

हृदय-शूल में हृदय को ५ मिनट तक गरम जल से भीगे और निचोड़े कपड़े से सेंककर १५ मिनट तक उस पर ठंडी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। इस

क्रिया को ४-५ वार दोहराना चाहिए। अथवा ५ मिनट तक पाँवों का गरम नहान देने के वाद आध घण्टे तक हाथों और पैरों में गरम कपड़ा लपेटकर उन्हें गरम रखना चाहिए।

दिल की धड़कन वढ़ने में दिल पर ठंडे जल से भीगी और निचोड़ी कपड़े की पट्टी आध-आध घण्टे पर २०-२० मिनट के लिए देते रहना चाहिए। पट्टी पूरे हृदय और पूरी दाहिनी पँजरी तक वढ़ाकर लगानी चाहिए। प्रवल दशा में मेरुदण्ड पर भी उसी प्रकार की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक बार पट्टी उतारने पर उस स्थान को सूखे कपड़े से रगड़-रगड़कर गरम कर देना चाहिए। हृदय पर नीली रोशनी का कुछ मिनटों तक प्रयोग तथा गहरी नीली वोतल के सूर्यतप्त जल की ४ खुराकें आधी-आधी छटाक रोज पिलाना दिल की वढ़ी धड़कन में लाभ करता है।

हृदय-रोग के साथ यदि पेट की भी तकलीफ हो, तो एनिमा के साथ पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी का प्रयोग भी ३० मिनट के लिए करना चाहिए।

हृदय-रोग के साथ यदि ज्वर भी हो, तो पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग करना चाहिए या १० मिनट का कटि-स्नान लेना चाहिए।

यदि रोगी को नींद न आती हो, तो सोने के पहले १५ मिनट तक उसके सिर पर ठंडे जल से भीगा और निचोड़ा कपड़ा रखकर और पैरों को १० मिनट तक गरम नहान देने से लाभ होगा।

यदि रोगी के शरीर में सूजन आ जाय और जलोदर के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगें, तो उसे पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट देकर दो घण्टे तक रखना चाहिए। अथवा २० से ३० मिनट तक धूप-नहान देकर पसीना निकाल देना चाहिए। पसीना निकालने के इन प्रयोगों के वाद रोगियों को स्पंज-वाथ जरूर देना चाहिए। तत्पश्चात् १० मिनट तक कटि-स्नान या मेहन-स्नान देना चाहिए।

जव उपर्युक्त प्रयोगों से हृदय-रोग का खतरा टल जाय तव धीरे-धीरे रोगी का उपवास तोड़कर प्रारम्भ में उसे दो-तीन दिनों तक प्रत्येक ढाई-तीन घण्टे के वाद अल्पमात्रा में फलों का रस देना चाहिए। तत्पश्चात् २-३ दिन तक सिर्फ पके फल, खासकर अंगूर, सेव, नाशपाती और रतालू आदि देने चाहिए। वाद में १० से १४ दिनों तक का आहार सम्भवतः निम्न प्रकार का होना चाहिए। उसके वाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिए :

जलपान से पूर्व : १ गिलास अंगूर का रस ।

जलपान : थोड़ा अंकुरित गेहूँ और उसके साथ भिगोयी किशमिश या सूखे बेर । उसके वाद केले को छोड़कर एक दो कोई फल ।

दिन का भोजन : उवली बन्द गोभी या चुकन्दर, अजमोद, टमाटर, प्याज, चुकन्दर की वारीक जड़ तथा गाजर आदि का मिश्रित सलाद दही के साथ । मक्खन के साथ दो चोकरदार रोटी ।

सायं-भोजन : कच्चे गाजर का रस १ पाव तथा अंगूर, सेव, किशमिश । प्यास लगने पर भोजनोत्तर फलों का रस या नीबू-रस मिले शहद का शर्वत । नमक, मसाला वर्जित है ।

फिर तीन सप्ताह निम्नलिखित आहार ग्रहण करें :

जलपान : अंगूर, नारंगी या सेव का रस । जो लोग जलपान के साथ खाना और पीना दोनों पसन्द करें, वे सेव और उसके साथ थोड़े सूखे मेवे खाकर १ पाव दूध पियें ।

दिन का भोजन : हरी सब्जियों का सलाद, रोटी और मक्खन । मीठा खाने की इच्छा होने पर मौसमी मीठे फल लें ।

सायं-भोजन : सब्जी का सूप और २-३ हरी सब्जियों के साथ हल्का भोजन।

विषाक्त रक्त के कारण हृदय-रोग होने पर :

गाजर का रस ५ औंस
चुकन्दर का रस ५ औंस
खीरे का रस ५ औंस

दिन में ३ वार ५-५ औंस की मात्रा में दवा के तौर पर मिश्रित कर लेना चाहिए।

८. हृदय-रोगों की स्थायी चिकित्सा

हृदय-रोग आधुनिक सभ्यता का रोग है, जिसका मनुष्यों की मृत्यु के वर्तमान कारणों में प्रमुख स्थान है। आजकल मनुष्य इस रोग से बड़ी संख्या में मृत्यु के घाट उतर रहे हैं। प्राचीन काल में हृदय-रोग से शायद ही कोई मरता था।

हृदय-रोग तथा रक्तवाहिनी नाड़ियों के विकार, जो लगभग २० से अधिक प्रकार के होते हैं, हृदय-रोग के नाम से ही पुकारे जाते हैं। आजकल ये रोग तो माता के गर्भ में ही पैदा हो जाते हैं।

यहाँ केवल ११ प्रकार के हृदय-रोगों पर, जिनका जोर आजकल ज्यादा है, विचार कर उनकी स्थायी चिकित्सा पर प्रकाश डाला जा रहा है। ये रोग हैं :

(१) अल्पकालिक हृदय-शूल
(Angina-Pectoris)
(२) दीर्घकालिक हृदय-शूल
(Myocardial infraction)

(३) दिल का दौरा पड़ना
(Coronary Thrombosis)
(४) हृदय-गति वन्द होने लगना
(Heart failure)
(५) रक्त-नलिकाओं का कड़ा पड़ जाना
(Arterio-sclerosis)
(६) हृत्कम्प
(Palpitation of Heart)
(७) हृदय का आकार में वड़ा होना
(Dilatation of Heart)
(८) हृदय का आकार में छोटा होना
(Contraction of Heart)
(९) हृदय-शोथ
(Carditis)
(१०) हृदय-कपाट-सम्वन्धी रोग
(Valvular disease)
(११) हृदय की मांसपेशियों का फैल जाना
(Hypertrophy of the Heart-muscles)

१. अल्पकालिक हृदय-शूल (Angina-Pectoris) : यह प्रायः ४५ वर्ष की आयु के वाद हुआ करता है। किन्तु उपदंश-रोग के कारण कभी-कभी यह कम आयु में भी होता है। इसके दौरे आते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को तथा मेहनत-मजदूरी करनेवाले लोगों की अपेक्षा अमीर-वर्ग के लोगों को यह

रोग अधिक होता है। आयु बढ़ने के साथ इस रोग के दौरे भी बढ़ जाते हैं और जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं। दर्द साधारणतः केवल ३-४ मिनट तक ही रहता है, मगर कभी-कभी देर तक भी रह सकता है।

इस रोग का दौरा होने के पहले रोगी को बेचैनी मालूम होती है और हृदय के स्थान पर भारीपन। प्रायः दर्द अचानक शुरू हो जाता है। यह दर्द छाती के बीच या हृदय की नोक पर होता हुआ प्रतीत होता है। छाती की बीच की हड्डी से फैलकर दर्द की टीसें विशेषकर बायीं तरफ जाती हैं। दर्द की तीव्रता और मन्दता के अनुसार लक्षणों में अन्तर होता है। दर्द छाती से प्रारम्भ होकर गर्दन तक, कभी-कभी दाँतों के निचले जबड़े तक फैल जाता है। साँस लेने में भयानक कष्ट होता है, जिससे कभी-कभी रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। रक्ताल्पता-रोग से पीड़ित रोगियों को यह रोग अक्सर होता देखा गया है। दर्द के समय मुँह लाल, बदन ठंडा तथा नाड़ी की गति धीमी हो जाती है। यह दर्द विशेषकर उस वक्त उठता है, जब मनुष्य बहुत उत्तेजित होता है या कोई श्रम का काम करता रहता है। ठंडे मौसम में और भोजन करने के बाद दर्द उठने की सम्भावना अधिक रहती है।

हृदय-रोग के कई कारण वताये जाते हैं। पहला कारण यह कि धमनियों की मोहरी सँकरी हो जाने से हृदय की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करने योग्य ही ताजा रक्त हृदय की मांसपेशियों में पहुँच पाता है और श्रम करते वक्त हृदय की मांसपेशियों को जिस मात्रा और जिस रफ्तार से ताजा रक्त अपेक्षित होता है, उस मात्रा में और उस रफ्तार से तंग मोहरी से होकर रक्त पहुँच नहीं पाता। इसलिए श्रम करते समय ही हृदय की मांसपेशियाँ ओषजन के अभाव से ग्रस्त हो जाती हैं। उस हालत में श्रम करते हुए या श्रम करने के वाद यह दर्द रोगी के सीने में उठ खड़ा होता है।

दर्द का दूसरा कारण यह वताया जाता है कि जव हृदय की रक्त की कोठरियों से प्रकृति वहाँ एकत्र विजातीय द्रव्य को वाहर निकाल फेंकने की चेष्टा करती है, तो रुकावटों को दूर करने में विजातीय द्रव्य के कणों में परस्पर रगड़ और टक्कर होती है। फलतः हृदय-शूल उत्पन्न हो जाता है।

दर्द का तीसरा कारण हृदय पर मनोभावों का दवाव वताया जाता है। अर्थात् क्रोध, चिन्ता, भय आदि द्वारा उत्तेजना से रक्त का दवाव वढ़ जाने पर हृदय-

शूल की सम्भावना हो जाती है। इस प्रकार के उत्तेजनापूर्ण मनोभावों के दवाव से एड्रेनल ग्रन्थियों से रक्त-प्रणाली में एड्रेनलिन स्रावित होने लगता है, जिससे लघुतर रक्त-नलियों में संकोचन हो जाता है। इस अवरोधन के सामने रक्त-संचालन की सामान्य गति वनाये रखने के लिए हृदय नाड़ी की गति एवं रक्तचाप को द्रुततर कर देता है। जब एड्रेनलिन-स्राव के कारण 'कोरोनरी' रक्त-कोषाणु संकुचित हो जाते हैं, तो हृदय की पेशियाँ अपने आवश्यक रक्त की खपत से वंचित रह जाती हैं। परिणामस्वरूप हृदय में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

कोई-कोई डॉक्टर हृदय-शूल को 'हृदय-स्नायु-शूल' नाम से पुकारते हैं, जिसे अंग्रेजी में Neuralgia of the Cardiac nerves कहते हैं। जिन व्यक्तियों के हृदय और उसकी स्नायुओं में कमजोरी आ जाती है अथवा जिनका स्नायविक केन्द्र जल्दी उत्तेजित हो उठता है, प्राय: उन्हींको यह रोग अधिक होता है। अर्थात् जिनका हृदय और स्नायविक केन्द्र दोनों एक साथ उत्तेजित हो जाते हैं, साधारणत: उन्हींको यह रोग विशेष रूप से सताता है।

चिकित्सा : इस दर्द के होने पर इसकी तात्कालिक

चिकित्सा तो ऊपर वतायी जा चुकी है। यह दर्द पुनः न हो अर्थात् इस रोग का दौरा आगे न हो, इसकी चिकित्सा आगे दी जा रही है।

दर्द न रहने की अवस्था में शरीर को विकार-रहित और स्वस्थ एवं सवल वनाकर इस रोग से आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है।

इस रोग को समूल नष्ट करने के लिए पेट की लपेट वड़ी उपकारी सिद्ध होती है। लपेट को घण्टे-घण्टे पर वदलकर रोज २-३ घण्टों के लिए प्रयोग करना चाहिए। हर हालत में दर्द के समय रोगी के दोनों पाँवों को गरम करके एक घण्टे के लिए पाँवों की लपेट देनी चाहिए। उसके वाद आध-आध घण्टे तक घर्षण-स्नान करना चाहिए। इससे हृदय की तकलीफ वड़ी तेजी से कम होने लगती है और दर्द का दौरा आना वन्द हो जाता है। इस रोग के रोगी के हाथ-पाँव ठंडे न होने पायें, इस पर सदा ध्यान रखना चाहिए। ठंडे हो जाने पर हल्की सेंक दे उन्हें गरम कर देना चाहिए।

रोज सवेरे सोकर उठते ही और शाम को सोने जाने के पहले मस्तक को ठंडे पानी से धोकर या पोंछकर समूचे शरीर को भी भीगे गमछे से पोंछ देना चाहिए।

उसके वाद समूचे शरीर की सूखी मालिश भी अवश्य करनी चाहिए।

वढ़े हुए रोग में हृदय को सवल वनाने के लिए हृदय की धड़कन तेज रहने पर रोज ५ मिनट से धीरे-धीरे वढ़ाकर १५ मिनट तक हृदय पर ठंडी पट्टी का प्रयोग एक या दो वार करना चाहिए। यह प्रयोग करते समय पैरों तले हल्की और नरम-गरम पानी-भरी रवर की एक थैली रख देनी चाहिए। ठंडी पट्टी का प्रयोग कर लेने के वाद उस जगह सूखे फलालेन द्वारा हल्के हाथ से रगड़कर सूखी मालिश कर देनी चाहिए। इस प्रयोग के करने से हृदय इतना सवल वन जाता है कि भयानक-से-भयानक हृदय की गति वन्द हो जाना भी अवश्य ही रुक जाता है। इस प्रयोग से हृदय की तेज धड़कन क्रमश: कम होते-होते वह अपनी स्वाभाविक दशा में आ जाता है। इस प्रयोग से हृदय की मांस-पेशियों का फैल जाना (Hypertrophy) भी ठीक हो जाता है।

जिस रोगी के हृदय की धड़कन स्वाभाविक से कम हो, उसके मेरुदण्ड पर रोज ६ से १२ मिनट तक गरम-ठंडी सेंक देनी चाहिए। एक मिनट गरम और उसके वाद एक मिनट ठंडी सेंक के प्रयोग से हृदय की

धड़कन स्वाभाविक स्थिति में आ जाती है और वह स्थायित्व प्राप्त कर लेती है। यह प्रयोग आरम्भ करने से पहले रोगी के सिर को ठंडे पानी से धो देना चाहिए। इस प्रयोग के वाद रोगी साधारण स्नान या घर्षण-स्नान कर सकता है।

हृदय के रोगी को कभी-कभी सर्दी-जुकाम न हो, इस बात का सदैव खयाल रखना चाहिए। यदि उसे कभी सर्दी हो जाय, तो जब तक सर्दी ठीक न हो, उसे रोज छाती की लपेट एक घण्टे के लिए लगानी चाहिए। खाँसी हो तो पैर की लपेट के साथ दिन में दो वार एक घण्टे के लिए उसे छाती की लपेट देनी चाहिए। छाती की लपेट देते समय लपेट के नीचे हृदय पर एक पतला गीला कपड़ा अवश्य रख लें। यदि हृदय की अवस्था बहुत खराब हो, तो यह लपेट केवल छाती पर ही पीठ की तरफ से घुमाकर देनी चाहिए, पेट पर नहीं।

हृदय-रोग के साथ यदि श्वास-कष्ट भी हो, तो उस अवस्था में रोगी को ६ मिनट तक पाँवों का गरम-नहान देने के बाद एक घण्टे के लिए पैरों की लपेट देनी चाहिए। इस समय भी हृदय पर ठंडी पट्टी अवश्य रखें। पट्टी हटा लेने के वाद हृदय के स्थान पर सूखे कपड़े से रगड़कर उसे गरम कर देना चाहिए। यह

प्रयोग करते समय रोगी के सिर और गर्दन को सदा ऊँचे रखकर उसे लिटाना चाहिए।

हृदय-शूल हो या कोई भी हृदय-रोग, उसके स्थायी उपचार के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम एनिमा और उपवास द्वारा आँतों को साफ कर लिया जाय और उन्हें साफ रखा जाय। भोजन जो रोगी ले, सुपच और हल्का हो। साथ ही एक बार में भोजन न खाकर कई बार में थोड़ा-थोड़ा खाना चाहिए। यदि एक बार में ही अधिक मात्रा में भोजन ले लिया जायगा, तो उससे पाकस्थली फूलकर हृदय पर दबाव डालेगी, जिससे उसके स्वस्थ होने में अड़चन पड़ेगी। हृदय-रोग से पीड़ित रोगी को कैलशियमवाले खाद्य-पदार्थ विशेष रूप से देने चाहिए। परीक्षण से जाना गया है कि हृदय-रोग से ग्रस्त रोगी को कैलशियम-प्रधान खाद्य कम देने से उसके हृदय की धड़कन अधिक बढ़ जाती और हृदय अतिदुर्बल हो जाता है। इसलिए ऐसे रोगियों को यथेष्ट मात्रा में गाय का दूध अवश्य देना चाहिए। किन्तु बहुत-से रोगियों को दूध अनुकूल नहीं पड़ता। उस हालत में उन्हें दूध की जगह मट्ठा या दही देना चाहिए। फल, साग-सब्जी, गुड़, शहद, अंकुरित गेहूँ, जौ एवं चोकरदार आटे की रोटी, हाथ-

छटा चावल तथा धान का लावा आदि भी ऐसे रोगी ले सकते हैं। जिन रोगियों को साग-सब्जी अनुकूल न पड़े, उन्हें उनका सूप ग्रहण करना चाहिए। हृदय-रोग के रोगी को घी और मक्खन नहीं खाना चाहिए। हृदय के कमजोर होने पर विशेषतया जल-शोथ रहने पर नमक को छूना भी नहीं चाहिए।

हृदय-रोग के रोगी को एक वार में अधिक पानी न पीकर वार-वार थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए। उत्तम यह है कि पीने के पानी में सदैव या कभी-कभी नीवू का रस मिला लिया जाय। हृदय-रोग में अत्यधिक पानी पीने से पेट फूलकर हृदय की तकलीफ को वढ़ा देता है। कभी व्लडप्रेशर वढ़ जाता है, तो कभी शरीर के विभिन्न अंगों में जल-शोथ। विशेषतः काफी पानी पी लेने से शरीर में रक्त की मात्रा वढ़ जाती है, जिसका शरीर के भीतर संचालन करने में हृदय को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। फलतः वह वेचैन हो जाता है और जल्दी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर पाता।

२. दीर्घकालिक हृदय-शूल (Myocardial infraction): हमारी धमनियों में एक प्रकार का थकास, जिसे 'थ्राम्वस' कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है, जो एकाएक धमनी के मार्ग को विलकुल वन्द कर

देता है। फलस्वरूप हृदय को रक्त नहीं पहुँच पाता और सम्बद्ध भाग या तो बेकार हो जाता या नष्ट हो जाता है। अतः 'कारोनरी थ्राम्बोसिस' और उसके फलस्वरूप हृदय के विभिन्न भागों के नष्ट होने से भारी दुर्दशा और असह्य दीर्घकालिक शूल उत्पन्न होता है। इसे Myocardial infraction कहते हैं। यह शूल कई घण्टों तक रहता है, बड़ी कठिनाई से जाता है और प्रायः घातक सिद्ध होता है। इस शूल को संख्या १ में वर्णित अल्पकालिक हृदय-शूल का भयानक रूप कह सकते हैं। इसकी विशेष व्याख्या और चिकित्सा के लिए आगे संख्या ३ में वर्णित 'दिल का दौरा पड़ना' पढ़ना चाहिए।

३. दिल का दौरा पड़ना (Coronary Thrombosis): जिस धमनी द्वारा हृदय ओषजन और पौष्टिक तत्त्व-मिश्रित शुद्ध रक्त प्राप्त करता है, उसे 'कोरोनरी' धमनी या 'आर्टरी' कहते हैं। कभी-कभी इस धमनी के भीतर जमे रक्त का लघुपिण्ड अटक जाता है, जिससे रस का आवागमन ठप हो जाता है। तब हृदय में सम्भवतः असह्य दर्द होने लगता है। इसीको 'दिल का दौरा पड़ना' या 'कोरोनरी थ्राम्वो-सिस' कहते हैं।

अचानक उत्तेजना, क्रोध या चिन्ता होने से, रक्त-चाप वढ़ जाने या शक्ति से अधिक परिश्रम करने से या रक्त में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति होने से 'कोरोनरी' धमनी में रक्तपिण्ड अटक जाता है। फलस्वरूप सीने में वायीं तरफ या वीचोवीच अचानक असह्य दर्द होने लगता है। इतना असह्य कि उस दर्द के साथ किसी दर्द की तुलना ही नहीं हो सकती। कभी-कभी यह दर्द मामूली भी हो सकता है। दर्द आध घण्टा से लेकर कई दिनों तक जारी रह सकता है। उचित उपचार के अभाव में अधिकतर यह घातक सिद्ध होता है।
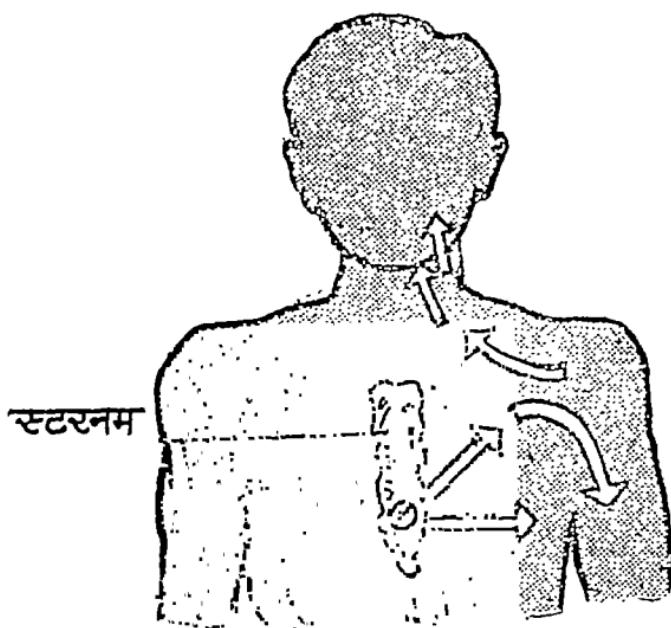
दर्द की दशा में नाड़ी वहुत धीमी होकर रोगी कमजोर हो जाता है। श्वास-कष्ट वढ़ जाता है। शरीर नीला पड़ जाता और चेहरे पर पीलापन छा जाता है। देह से ठंडा पसीना निकलने लगता है। कभी-कभी कै, दस्त, अफरा और हिचकी के दौरे भी आने लगते हैं। साधारणतः ऐसी स्थिति में ज्वर हो जाता है, जो कई दिनों तक वना रहता है।

आमतौर पर रक्तचाप वढ़ने पर औषधियों द्वारा उसे कम करने के फलस्वरूप धमनी के भीतर रक्त-संचालन में ढीलापन आ जाता है, जिससे अन्त में यह

रोग उत्पन्न होता है। रोग की दशा में हृदय आकार में थोड़ा बढ़ा हुआ भी प्रतीत होता है।

गलत खान-पान से जब रक्त विषैला बन जाता है तथा रक्त की रासायनिक स्थिति में परिवर्तन हो जाता है, तो उसमें अन्दर थक्का-थक्का-सा पैदा हो जाता है, जो इस बीमारी का कारण होता है।

रोग का आक्रमण होने पर रोग की अति तीव्र वेदना को कम करने के लिए चिकित्सक अक्सर मरफिया का प्रयोग करते हैं। लेकिन हृदय-रोगों में 'मरफिया' विष का प्रयोग अत्यन्त खतरनाक है। दिल की बीमारी

हृदय की पीड़ा का पथ

में मरफिया का प्रयोग करने से अब तक लाखों आदमियों की जानें जा चुकी हैं।

शरीर में, विशेषकर रक्त में गन्दगी बढ़ जाने से धमनियों की भीतरी झिल्ली में सूजन आ जाती है, जिससे वह खुरदरी हो जाती है। फलस्वरूप प्रायः कभी उसमें रक्त-कण अटक जाते हैं, रक्त से पोषण पाकर वे बढ़ जाते हैं और रक्त-संचालन को एकदम रोक देते हैं, जिससे दिल का दौरा रोग हो जाता है। दिल घबड़ाने लगता है, साथ ही असह्य पीड़ा की अनुभूति होती है। ऐसा दौरा पड़ने पर कभी-कभी हृदय की गति एकबारगी ही रुक जाती और आदमी मर जाता है। लेकिन यह गलतफहमी दूर हो जानी चाहिए कि दिल का दौरा पड़ने पर आमतौर से मृत्यु हो ही जाती है। यह भ्रम भी मिटाना चाहिए कि अचानक मृत्यु होने का कारण दिल का दौरा ही होता है। इस तरह की मृत्यु के अन्य कारण भी हो सकते हैं। बहुत से लोग छाती में जरा-सा दर्द हुआ तो उसे दिल के दौरेवाला दर्द समझकर व्यर्थ परेशान होते हैं। कभी-कभी सीने में मामूली-सी टीस होती है। रह-रहकर होने-वाली उस टीस का हृदय से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह तो सीने की मांसपेशियों में मामूली गड़बड़ी के

कारण उठती है। कभी-कभी सीने में फड़फड़ाता-सा या सूई चुभने जैसा दर्द उठता है और एक अजीव-सी वेचैनी महसूस होती है। इस प्रकार की चुभन का भी दिल के दौरे से कोई सम्बन्ध नहीं। यह चुभन पेट में अधिक गैस भर जाने से होती है। पेट या गले के रोगों के कारण भी कभी-कभी सीने में दर्द होता है। इसलिए छाती के सभी प्रकार के दर्दों को 'दिल के दौरे-वाला दर्द' समझकर व्यर्थ परेशान नहीं होना चाहिए।
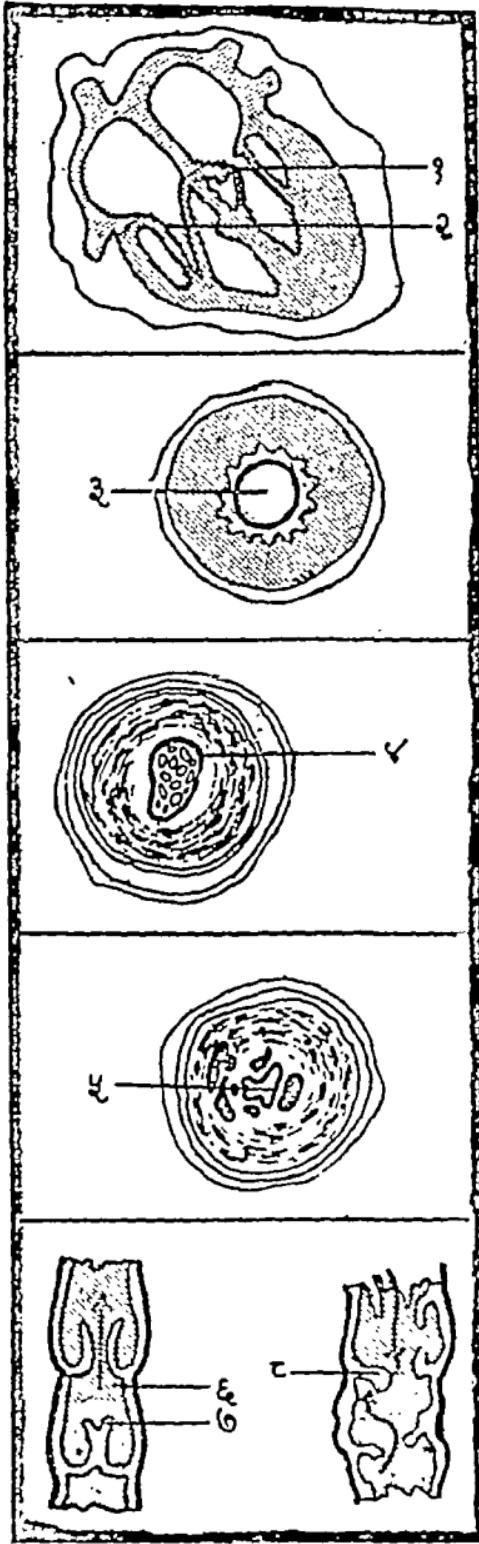
दिल का दौरा पड़ने के वाद क्या होता है, इसे समझ लेना चाहिए। दिल का दौरा पड़ने के बाद यदि तात्कालिक उचित उपायों से जान बच गयी तो हृदय की मांसपेशी का मृतभाग या उसका घाव प्रकृतितः भरने लगता है। यदि पुनः कोई गड़बड़ी न हुई, साथ ही प्राकृतिक उपचार भी चलता रहा तो वह तीन-चार सप्ताह में भर जाता है। लेकिन इस बीच या घाव भरने के तुरन्त बाद अक्सर मांसपेशी के कमजोर पड़ जाने के कारण हृदय की स्वाभाविक कार्य-कुशलता में थोड़ा अन्तर आ जाता है। वह रक्त को सही गति और सही माला में शरीर के विभिन्न अंगों में भेज नहीं पाता। उस दशा में अक्सर रोगी का श्वास चढ़ा रहता है। तनिक भी परिश्रम करने पर उसके पैर और

अन्य अंग सूज जाते हैं । यदि हृदय की मांसपेशियों को कुछ अधिक क्षति पहुँची होगी तो ऐसी सूजन शारीरिक श्रम न करने पर भी आ जायगी । दिल का सही और स्वाभाविक रूप से धड़कते रहना एक प्रकार की आन्तरिक विजली में झटकों द्वारा संचालित होता है । हृदय की मांसपेशी के जिन भागों से ये झटके पैदा होते और गुजरते हैं, उन्हें किसी प्रकार की क्षति पहुँचने पर हृदय-स्पन्दन की गति भी गड़वड़ा जाती है । कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि बीच-बीच में कोई-कोई धड़कन गायव हो जाती है । पर यह खतरनाक नहीं होता और न इससे हृदय के स्वाभाविक कार्य में कोई गड़वड़ी ही होती है । मगर कभी-कभी ऐसा होता है कि एक सिलसिले से वहुत तेज धड़कनें पैदा हो जाती हैं या लगातार मन्द और मरियल धड़कनें उठती हैं, जिससे शरीर के विभिन्न अंगों को उचित मात्रा में ठीक गति से रक्त पहुँचने का काम चौपट हो जाता है । ऐसी दशा में कभी-कभी तुरन्त मृत्यु हो जाने का भय भी रहता है ।

'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल' का मत है कि जीवन के शिखर पर विचरनेवाले व्यक्तियों को मृत्यु के महा-भयानक गर्त में गिरानेवाले रोगों के रूप में 'कोरोनरी थ्राम्बोसिस' हमारे युग की सवसे वड़ी विभीषिका है ।

पिछले कुछ वर्षों से इस रोग के रोगियों की संख्या असाधारण रूप से बढ़ रही है और दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस रोग में एक विशेषता यह भी है कि प्रौढ़ावस्था से बुढ़ापे में कदम रखनेवाले ही साधारणतः इस बीमारी के शिकार होते हैं।

स्टेनले हास्पिटल, मद्रास में सन् १९५८ से १९६० तक 'कोरोनरी थ्राम्बोसिस' और 'आरटेरिओ स्लेरोसिस' के रोगियों की संख्या में १२ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अमेरिका में प्रतिवर्ष लगभग ५ लाख व्यक्तियों को इस रोग का दौरा पड़ता है। कुल आबादी के हर ४० पुरुषों में एक पुरुष और प्रति १२० स्त्रियों में एक स्त्री को इन रोगों का दौरा पड़ता है। सबसे अधिक खतरा इन रोगों से ४० से ७० वर्ष की उम्रवाले, नाटे, मोटे और अधिक खानेवाले महत्त्वाकांक्षी विद्वानों और चिकित्सकों को है। ये ही लोग इन रोगों के शिकार होते अधिक देखे गये हैं।

हृदय-यन्त्र के कुछ स्वस्थ और अस्वस्थ पुर्जे

१. अस्वस्थ वाल्व, २. स्वस्थ वाल्व, ३. शिरा-कपाट स्वस्थावस्था में, ४. कोरोनरी थ्राम्बोसिस रोग के कारण शिरा-कपाट विकृतावस्था में, ५. आरटेरिओ स्लेरोसिस के कारण शिरा-कपाट संकुचितावस्था में, ६. और ७. धमनी का स्वस्थ वाल्व, ८. वही वाल्व--अस्वस्थावस्था में ।

चिकित्सा : रोग का आक्रमण होते ही रोगी को अविलम्ब मानसिक और शारीरिक विश्राम देने के लिए आरामदेह बिस्तर पर जिस स्थिति में उसे आराम मिले, उस स्थिति में लिटा देना चाहिए। लिटाकर उसके शरीर को गरम रखने के लिए उसे कम्बल में लपेट देना चाहिए। जरूरत हो तो कम्बल के नीचे इस काम के लिए गरम जल से भरी बोतलें भी रख देनी चाहिए। इस हालत में ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि रोगी को नींद आ जाय।

दर्द के समय हृदय पर कुछ देर के लिए बर्फ की थैली रखनी चाहिए या बदल-बदलकर कपड़े की ठंडी पट्टी। दर्द कम हो जाने पर थैली या पट्टी हटाकर उस स्थान को हल्के हाथों या मुलायम ऊनी कपड़े से रगड़-कर गरम कर देना चाहिए।

रोग के शुरू में यदि ताजी हवा का सेवन किया जाय, सुबह हल्की धूप में धूप-स्नान लिया जाय, गरम तौलिया-स्नान रोगी को कराया जाय और कुछ दिनों बाद गरम पानी का कटि-स्नान भी कराया जाय और फिर ठंडा तौलिया-स्नान करायें, तो रोग जोर न पकड़ने पायेगा और वह जल्दी दूर भी हो सकेगा। कब्ज हो तो एनिमा द्वारा पेट साफ कर देना चाहिए।

यदि रोगी के हाथ-पैर ठंडे हो गये हों या हो रहे हों, तो अविलम्ब उन्हें गरम कर देना चाहिए। इसके लिए फौरन् पैर की उँगलियों से घुटनों तक एक गीले कपड़े से ढँककर उस पर ऊनी पट्टी लपेट देनी चाहिए। यदि पूरी टाँग ठंडी हो, तो यह पट्टी पूरी टाँग पर लगानी चाहिए। इससे टाँगों में गरमाहट आयेगी, हृदय-स्थान का रक्तचाप कम होगा और वेदना घटेगी।

इस रोग में कम-से-कम डेढ़ मास तक रोगी को विस्तर पर पड़ा रहकर विश्राम करना चाहिए। पाखाना-पेशाव भी विस्तर के पास ही किसी वर्तन में करना चाहिए।

पेट साफ होता रहे, इसके लिए रोगी को दिन में दो वार एक-एक घण्टे के लिए पेट की लपेट देनी चाहिए। नहाने के पहले रोगी को प्रतिदिन एक घण्टे के लिए पाँव की लपेट देनी चाहिए। इससे सारे शरीर में अपने-आप पसीना आ जाता है।

अभी हाल में चिकित्साविदों ने यह स्वीकार किया है कि उपवास इस रोग की प्रधान चिकित्सा है और उसके वाद उचित आहार। उपवास से रोग का मूल कारण दग्ध हो जाता है। रोग के दौरान वीच-वीच में छोटे-छोटे कई उपवास करने चाहिए। स्वस्थ हो

जाने पर भी जहाँ तक सम्भव हो, इस प्रकार के उपवास करते रहना चाहिए।

रोगी को यथेष्ट मात्रा में फल या मौसमी फलों का रस देना चाहिए। खट्टे फल उसके लिए बहुत हितकर होते हैं। सलाद भी देना चाहिए, पर पहले सलाद का रस निकालकर देना चाहिए।

थोड़ी तबीयत सँभलने पर रोगी को थोड़ा दूध और यथेष्ट दही देना चाहिए। दूध में थोड़ा शहद भी मिलाया जा सकता है। पूर्ण स्वस्थ होने पर धीरे-धीरे साधारण भोजन पर आना चाहिए।

यह कहना कि 'कोरोनरी थ्राम्बोसिस' का रोगी स्वस्थ हो जाने पर भी बहुत दिनों तक नहीं जीता, गलत है। यदि हृदय को दोषमुक्त किया जाय और रखा जाय, उचित खान-पान पर ध्यान दिया जाय तथा औषधियों द्वारा हालत खराब न की जाय, तो देह फिर से पूर्ण स्वस्थ होकर मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है।

४. हृदय-गति बन्द होने लगना (Heart failure) : सभी रोगों के प्रत्यक्ष लक्षण होते हैं तथा स्थितियाँ होती हैं, जिन्हें जानकर हम समय से पूर्व ही उनसे सावधान रहते हैं। लेकिन हृदय-गति बन्द हो जाने के रोग का कोई प्रत्यक्ष लक्षण नहीं होता। यह

मौत एक अदृश्य मौत है, जिससे आनन-फानन मौत के घाट उतर जाते हैं। मैंने कुछएक ऐसे रोगियों को देखा है, जो सवेरे अपने काम पर गये पूरी तन्दुरुस्ती की हालत में, मगर जव शाम को घर लौटे तो विना किसी रोग के ही कुर्सी या चारपाई पर मुर्दा पाये गये। इस सद्य:प्राणहारी रोग का आक्रमण होने पर ९९ प्रतिशत यही होता है कि इसके पहले कि कोई चिकित्सक रोगी तक पहुँचे, रोगी न केवल पूरे तौर से रोग का शिकार ही हुआ रहता है, वल्कि वह चल भी वसता है, चिकित्सक को उल्टे पाँव लौट जाना पड़ता है।

इस रोग के कुछ पूर्व-लक्षण अवश्य होते हैं,पर उनके प्रकटीकरण और मौत में वहुत थोड़ा ही अन्तर होता है। जव हृदय-गति वन्द होने को होती है, तो उस समय अत्यधिक और अवर्णनीय प्रकार की वेचैनी महसूस होने लगती है। साथ ही सारे शरीर में अचानक एक प्रकार की असह्य गरमी मालूम होने लगती है और उसके वाद शरीर पसीना-पसीना हो जाता है। छाती में जोरों का दर्द होता है, जिससे आदमी छटपटाने लगता है। कभी-कभी पेट में नाभि के ऊपर पीड़ा होती है, जिसे 'कलेजे का दर्द' कहा जाता है।

साधारणत: समझा जाता है कि जव रोगी की

साँस फूलने लगे, चेहरे पर भरभराहट उमड़ आये तथा पाँवों में सूजन आ जाय, तभी हृदय-गति बन्द हो जाने की आशंका होती है। किन्तु यह समझना गलत है, कारण ये लक्षण साधारणतः हृदय-रोग के हो सकते हैं। दिल की हरकत बन्द होने की बीमारी में इन लक्षणों का पाया जाना जरूरी नहीं है। इस रोग को हृदय-बैठना (Sinking of the Heart) भी कहते हैं।

चिकित्सा : हृदय-रोगों की तात्कालिक चिकित्सा देखिये।

५. रक्त-नलिकाओं का कड़ा पड़ जाना (Arterio-selerosis) : इस रोग को Hardening of arteries, Arterio-sclerosis या Disease of blood vessels भी कहते हैं। इसमें धमनियों की बाहरी दीवारें सख्त हो जाती हैं और अन्दर की नरम। धमनियों में कड़ापन आ जाने से रक्त-नलिकाओं का व्यास, जिनसे रक्त प्रवाहित होता है, संकीर्ण हो जाता है। ऐसी अवस्था में रक्त आसानी से जम जाता है और रक्तचाप वढ़ जाता है। इस रोग के होने का अर्थ होता है मनुष्य का समय से पहले ही वृद्ध हो जाना।

धमनियों में कड़ापन आने की अवस्था धमनियों तक ही सीमित नहीं रहती, उससे और भी कई रोग

उत्पन्न हो सकते हैं। भयंकर पक्षाघात हो सकता है, मस्तिष्क का भेजा क्षतिग्रस्त हो सकता है तथा हृदय-वेष्टक धमनी अवरुद्ध होकर हृदय-गति भी वन्द हो सकती है।

धमनियों के कड़ापन का पता वहुत मुश्किल से लग पाता है, क्योंकि इसे रोग का उग्ररूप लेने में वहुत समय लगता है—वीसों, वल्कि इससे भी अधिक वर्षों का समय। शुरू-शुरू में तो इस रोग का पता लगाना एक तरह से असम्भव ही होता है। रोग की वढ़ी अवस्था में उच्च रक्तचाप का होना प्रधान चिह्न है।

हर वक्त खोया-खोया-सा रहना, याददाश्त की कमी, शारीरिक निर्वलता, चित्त की चंचलता, चिड़-चिड़ापन, वेहोशी, कोष्ठवद्धता, पेट में गैस वनना, भूख न लगना, पैरों में ऐंठन, वजन का गिरना, त्वचा की शुष्कता, झुर्रियों का पड़ना तथा गुर्दों में खरावी आदि इस रोग के अन्य लक्षण हैं। मस्तिष्क की रक्त-नलिकाओं के कड़ा पड़ने पर सिर में हर वक्त दर्द वना रहता तथा मस्तिष्क-सम्वन्धी अन्य विकार प्रकट हो सकते हैं।

चिकित्सा : शरीर की रक्त-नलिकाओं के कड़ेपन की चिकित्सा आरम्भ करने के पहले हमें उन आदमियों

से बाज आना होगा, जिनके कारण यह रोग हुआ है। इस रोग के इलाज के लिए औषधियों का प्रयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिए। सादा भोजन, सादी रहन-सहन तथा तनावरहित शरीर और मस्तिष्क ये तीन बातें यह रोग दूर करने की पूरी-पूरी क्षमता रखते हैं। अतः इनका पालन अविलम्ब कर देना चाहिए। इस रोग में शरीर का सारा रक्त विषाक्त हो उठता है। इसलिए सर्वप्रथम उसीको विशुद्ध करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके लिए ४ से ७ दिनों या १० से २० दिनों का उपवास करना बहुत जरूरी है। उपवास जितना ही लम्बा होगा, फल उतना ही अच्छा होगा। वह जितना ही छोटा होगा, लाभ में उतना ही विलम्ब होगा।

उपवास तोड़ने के बाद डॉक्टर मैक्फेडन की राय से कुछ दिनों तक दूध पर रहना ठीक होता है। मगर रोजाना ४ क्वार्टर से अधिक दूध नहीं लेना चाहिए, अन्यथा शरीर का वजन अनावश्यक रूप से बढ़कर रोग दूर होने में अड़चन पैदा कर सकता है। दूध अनुकूल न पड़ने पर केवल फलों का रस दिया जा सकता है या फल-दूध। दूध या फल-रस लेने के दिनों में भी रोगी को सप्ताह में एक दिन उपवास जरूर करना

चाहिए और साथ ही पूर्ण विश्राम भी। इसके वाद धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जाना चाहिए। मगर अतिभोजन से हर हालत में परहेज करना चाहिए। तम्वाकू, चाय, सफेद चीनी, काफी, शराव तथा मसालों का सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो नमक भी त्याग देना चाहिए। भोजन में विटामिन 'वी' की कमी नहीं होनी चाहिए।

रोगी को रोग दूर होने तक पूर्णरूप से शारीरिक और मानसिक विश्राम लेना चाहिए और रोज १० घण्टे गाढ़ी नींद। उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे उसका नाड़ी-मण्डल उत्तेजित हो उठे और तनाव में आ जाय। उसे स्त्री-सहवास से भी परहेज करना चाहिए। व्यायाम में उसे शक्ति के अनुसार प्रातः-भ्रमण करना चाहिए।

रोगी को सप्ताह में एक बार 'एप्समसाल्ट वाथ' लेना चाहिए। रोज प्रातःकाल शरीर की सूखी मालिश, मेहन-स्नान और श्वास की कसरतें आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

६. हृत्कम्प (Palpitation of Heart) : इसमें जोर-जोर से दिल के धड़कने के दौरे आते हैं। उस समय रोगी की घवड़ाहट वढ़ जाती है और उसे मृत्यु-भय

सताने लगता है। यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। पेशियों, विशेषकर हृदय की पेशियों और स्नायुओं की निर्वलता इस रोग का मूल कारण है। हृदय में किसी रोग के हो जाने के कारण जव हृत्कम्प होता है, तो उसमें हाथ अक्सर वर्फ की तरह ठंडे हो जाते हैं और ठंडा पसीना आता है।

चिकित्सा : इस रोग की चिकित्सा अल्पकालिक हृदय-शूल की चिकित्सा की भाँति ही होनी चाहिए।

७-८. हृदय का आकार में वड़ा और छोटा होना (Dilatation of Heart and Contraction of Heart) : हृदय में या हृदय के आसपास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से रक्त-नलिकाओं में दूषित पदार्थ भर जाते हैं, जिससे वे कड़ी और तंग हो जाती हैं। साथ ही हृदय की दीवारें भी मोटी हो जाती हैं और फैल जाती हैं, जिससे हृदय आकार में वड़ा प्रतीत होने लगता है। इसे ही 'हृदय का आकार में वड़ा होना' कहते हैं। जव विजातीय द्रव्य की ही गरमी से हृदय सूख जाता है, तो उस वक्त वह आकार में छोटा हो जाता है, जिसे 'हृदय का आकार में छोटा होना' कहते हैं।

हृदय को जब अपनी सामर्थ्य से अधिक काम करना पड़ता है, तब भी उसकी दीवारें सख्त और मोटी हो जाती हैं। फलस्वरूप आगे चलकर वे दीवारें ढीली होकर फैलने लगती हैं और हृदय सूखने लगता या उस पर चर्बी जमा होने लगती है।

चिकित्सा : इस रोग की स्थायी चिकित्सा अल्प-कालिक हृदय-शूल की चिकित्सा की भाँति होनी चाहिए।

९. **हृदय-शोथ** (Carditis) : हृदय में शोथ या सूजन उत्पन्न हो जाना इस बात का प्रमाण है कि हृदय में विजातीय द्रव्य काफी मात्रा में एकत्र हो गये हैं। हृदय भीतर-बाहर चारों तरफ से एक प्रकार की झिल्ली से ढँका होता है। जब उसके ऊपर की झिल्ली में सूजन आ जाती है, तो उसे 'परिहार्दिक सूजन' (Pericarditis) कहते हैं और जब यह सूजन हृदय के एकदम अन्तरंग में होती है, तो उसे 'अन्तर्हार्दिक सूजन' (Endocarditis) तथा जब स्वयं हृदय या उसकी माँसपेशियों में सूजन आ जाती है, तो उसे 'मध्यहार्दिक सूजन' (Myocarditis) कहते हैं। प्रायः हृदय को ढँकने-वाली झिल्ली में, जिसे 'हृदयावरण' (Pericardium) कहते हैं, पानी आ जाने से भी हृदय सूजा हुआ प्रतीत

होता है, जिसकी बढ़ी हुई अवस्था में रोगी को श्वास लेने में कष्ट होता है।

परिहार्दिक सूजन में हृदय में मीठा-मीठा दर्द होता है और नाड़ी तेज चलती है। कभी-कभी विषम-ज्वर, वातजनित ज्वर, न्युमोनिया, रक्त-ज्वर तथा इनफ्लुएंजा आदि रोग भी हो जाते हैं। अन्तर्हार्दिक सूजन में रोगी छाती में भारीपन अनुभव करता है। मध्यहार्दिक सूजन में जब रोग बढ़ा होता है, तो हृदय के स्थान पर हल्की पीड़ा के साथ ज्वर भी होता है।

चिकित्सा : अल्पकालिक हृदय-शूल चिकित्सा की भाँति इस रोग की चिकित्सा होनी चाहिए।

१०. हृदय-कपाट-सम्बन्धी रोग (Valvular disease) : ये रोग अधिकांशत: उन्हीं कारणों से होते हैं, जिनसे हृदय-शोथ होता है। आमतौर पर माइट्रल वाल्व (Mitral valve) ही सर्वाधिक प्रभावित होता है, जिससे उसमें सिकुड़न (Mitral stenosis) पर छिद्र (Mitral incompetence) अथवा दोनों ही एक साथ विद्यमान हो जाते हैं। आर्वटिक वाल्व (Aortic valve) भी इन्हीं कारणों से सामान्यत: प्रभावित होता है।

चिकित्सा : इस रोग की चिकित्सा भी वही है, जो अल्पकालिक हृदय-शूल की है।

११. हृदय की मांसपेशियों का फैल जाना (Hypertrophy of the Heart-muscles) : हृदय की मांसपशियों से अधिक काम लेने से यह रोग हो सकता है ।